अचर्चित लघु
कहानियाँ
शकुन्तला दुबे

अचर्चित लघु कहानियाँ

लेखिका की कृति

•

शकुन्तला दुबे

•

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशकीय

प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ मानवीय मूल्यों एवं संवेदनाओं से गुंफित हैं। आज जिस प्रकार से सामाजिक-राजनीतिक एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों का क्षरण हो रहा है, वह चिन्तनीय है। ऐसे में इस संग्रह की कहानियाँ आशा की किरण की तरह हैं।

साहित्य में आज विधागत स्तर पर अनेक प्रयोग हो रहे हैं, लेकिन उसका उद्देश्य और उसकी प्रेरणा यथापूर्ण बनी हुई है। प्रेम, करुणा और परदु:ख कातरता मनुष्य के स्वाभाविक गुण हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य चेतना के स्तर पर श्रेष्ठ कहलाता है। इस संग्रह की कहानियाँ हमें इसी दिशा में प्रेरित करती हैं।

शकुन्तला दुबे एक सफल मनोवैज्ञानिक चिकित्सक हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों में पात्रों का सूक्ष्म मनोविश्लेषण मिलता है। इस दृष्टि से इस संग्रह में संकलित दसों कहानियाँ विशिष्ट हैं। लेखिका की भाषा और शैली सरस, रोचक और प्रवाहपूर्ण है। आशा है कि ये कहानियाँ पाठकों को जीवन के एक नए अनुभव से परिचय कराएँगी।

—मंत्री

प्राक्कथन

1995 में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली से मैं रिटायर हुई थी। बाद में जो भी समय मिला उसमें पढ़ने और लिखने का विधिवत् कार्यक्रम बना रहा। अपने विषय (निदान मनोविज्ञान) पर अपनी लम्बी सेवा के अनुभवों को अंगरेजी में लिखने का मुझे भरपूर सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हिन्दी में मेरी इस विषय के चिन्तन पर एक कविता संग्रह 'सहोदरा काव्यमाला-मानस सन्ताप विमोचन', (1996) तथा उपन्यास 'गन्धर्व की पहचान' (2005) अवकाश काल में होते हुए भी प्रकाशित हुआ।

मेरे बचपन की मधुर स्मृतियाँ जिनसे प्रेरित होकर मैंने अपनी स्कूली शिक्षा के काल में महिला कॉलेज, लखनऊ की वार्षिक पत्रिका में 'खंडहर की आत्मकथा' शीर्षक से संस्कृत में लिखी थी, उस समय मुझे काफ़ी प्रोत्साहन मिला। निदान विज्ञान की उच्चतम अध्ययन में व्यस्त एवं कार्यरत रहकर भी मेरा उपन्यास 'चेतना की परतें' (1987) तथा 'बन्नी' (1995) प्रकाशित हुआ। निस्सन्देह हिन्दी में अनजाने साहित्यकार का प्रकाशन काफी टेढ़ी खीर है।

स्वर्गीय प्रभाकर माचवे, जैनेन्द्र, यशपाल जैन एवं अन्य कई साहित्यकारों ने मुझे सतत प्रोत्साहन दिया है, इसी उत्साहवर्धन का प्रतिफल है कि मैं पाठकों के समक्ष अपनी कहानियों का संग्रह लेकर फिर उपस्थित हुई हूँ।

मेरी अवधारणा है कि सफल मनोवैज्ञानिक बनने के लिए अच्छे साहित्य का खूब मन लगाकर अध्ययन करना चाहिए। मैंने सतत अंगरेजी, हिन्दी एवं संस्कृत के भंडार को खोजने का प्रयास किया है। अपने पाठ्य विषय दर्शन-मनोविज्ञान-मनोचिकित्सा विज्ञान एवं अनेक मूर्धन्य विद्वानों की संगति में बैठकर मैंने निरन्तर यह कोशिश की है कि मैं अपने रोगियों पर आधारित 'केस रिपोर्ट' पर हिन्दी में कुछ न लिखूँ क्योंकि वह सब आम चर्चा की विषय-वस्तु नहीं है, वह तो अत्यन्त गोपनीय अन्तरंग संवाद है जिसने निस्सन्देह मुझे चेतन एवं अचेतन मन को खोलने की कुंजी प्रदान की, लेकिन वर्तमान और यथार्थ पर अपनी कड़ी नज़र रखने के कारण अपने देश, काल, जीवनचक्र के कटु और मधुर अनुभवों से कैसे मैं मुक्त हो

सकती हूँ? वह Subjectivity (आत्मपरकता) आना स्वाभाविक है। मेरी कहानियों में अंशत: आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं की अभिव्यक्ति है।

1936 में प्रेमचन्द उच्च कोटि के कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। आज भी उनकी अनेक कहानियों को चाव से पढ़ते समय हमें लगता है कि गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। उनके अनुसार, ''वर्तमान आख्यायिका का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ व स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।'' (मानसरोवर भाग- 1, प्राक्कथन : कमल किशोर गोयनका (सं.)'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', (भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1988, पृ. 371) में वह जोड़ते हुए स्पष्ट करते हैं कि ''अब वह केवल एक प्रसंग का, आस्था की एक झलक का, सजीव, मर्मस्पर्शी चित्रण है। एक तथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। अब उसमें व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक रहता है। लेखक को जो कुछ भी कहना है, वह कम-से-कम शब्दों में कह डालना चाहता है।'' मेरी प्रस्तुत कहानियाँ इस मानदंड पर कितनी सटीक हैं, इसे मैं पाठकों एवं साहित्यकार वर्ग की प्रतिक्रिया पर छोड़ देना चाहूँगी। मुझे तो लिखते समय किसी आलोचनात्मक साहित्य की कटिबद्धता का दूर-दूर तक अनुभव न था, यह तो कृति है उस पल की जिसमें लेखक लिखने के लिए बाध्य हो जाता है।

शकुन्तला दुबे
238, मुनीरका विहार
नई दिल्ली-110067

अनुक्रम

भावनाएँ बनी रहीं समानान्तर

'मुझे भी कुछ कहना है' ये विचार उसके मस्तिष्क में सतत उठकर वैसे ही खोजता जैसे लहरें उठ-उठकर समुद्र तट से टकराकर समुद्र में विलीन हो जाती हैं। उस रात एकाएक सूचना आ आने से कि उसे 20,000 /- की राशि लेकर बड़ौदा से सूरत रेलवे स्टेशन पर बम्बई-दिल्ली जानेवाली मेल गाड़ी पर उससे भेंट करना बेहद जरूरी है। ये बात चार दशक पुरानी है, उस समय रेल की यात्रा करना इतना दुरूह (Complicated) न था, पहले से आरक्षण केवल लम्बी यात्रा में ही कराना पड़ता था, बड़ौदा से सूरत तक की यात्रा द्वितीय श्रेणी की टिकट लेकर आसानी हो जाती थी। लेकिन 20,000/- जैसी रकम का इन्तजाम करना उसके लिए असम्भव था, उस समय उसने नौकरी चन्द महीनों पहले ही शुरू की थी, वह कहाँ से इतनी बड़ी रकम इकट्ठा कर सकती थी, उसका भान उसे क्यों न रहा? फिर इतनी जल्दी क्या जरूरत पड़ गई है, ऐसा क्या काम आ पड़ा है जिसमें उसे अपनी जेब से पैसे लाने अनिवार्य हैं? आदि अनेक प्रश्न उठे किन्तु वह सब अनकहे रहे, उसे तो तुरन्त सूरत पहुँचना था और प्लेटफार्म पर इन्तजार करना उचित लगा, सावधानी के लिए उसने अपनी बड़ौदा बैंक की चेक बुक रख ली थी जिससे उसे विश्वास हो जाए कि उसके खाते में जितनी भी जमा राशि है उसके लिए वह सहर्ष चेक काट देगी। उससे अपनी सुखद भेंट हो जाने की कल्पना मात्र से पैसे के लेन-देन की कटुता का भार उसके चित्त से उतर गया, वह पुलकित हो एक जोड़ी बदलने के कपड़ों को बैग में रखकर कब, कैसे बड़ौदा से सूरत तक की ट्रेन यात्रा कर सकी, उसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। दिल में उमंगों का सैलाब उठ रहा हो तो वास्तविकता की कठिनाइयाँ वैसे पार हो जाती हैं जैसे ट्रेन की तेज़ रफ़्तार में छोटे-मोटे स्टेशन गुज़रते जाते हैं। सूरत के स्टेशन पर उतरकर उसने कुली द्वारा बम्बई से आनेवाली मेल गाड़ी का समय और किस नम्बर के प्लेटफार्म पर रुकेगी आदि के बारे में पूछना उचित समझा क्योंकि उसे किसी रेलवे कर्मचारी से इस विषय की जानकारी लेना उचित नहीं लगा। भाग्यवश कुली ने ज्यादा कुछ नहीं पूछा, वह जल्दी में था लेकिन इतनी जानकारी दे गया कि एक गाड़ी जो कि तीव्रगामी रेल (Fast Train) बम्बई-दिल्ली

जा रही है वह प्लेटफार्म नं. 2 पर कुछ देर में आनेवाली है, वह अपने निर्धारित समय पर नहीं है, वहाँ जाकर इन्तजार करना ठीक रहेगा। इस समय ट्रेन का सूरत में देर से पहुँचना उसे हितकर लगा। वह उत्साहित हो प्लेटफार्म नं. 2 पर पहुँचकर एक खाली कुर्सी पर बैठकर इन्तजार करने लगी।

प्लेटफार्म पर काफी भीड़ थी। गाड़ी देर से आने के कारण लोगबाग मन मुताबिक इधर-उधर फैले हुए थे, कोई जमीन पर तो कोई कुर्सी पर, एक परिवार ने तो ज़मीन पर चादर बिछाकर चाय-पानी, भुजिया आदि खाने-पीने का इन्तजाम कर लिया था। दूसरी ओर कुछ अपनी सुन्दर-सुन्दर पोशाक पहने काठियावाड़ी आदिवासी जमीन पर बैठे औंधा रहे थे। सुनने में आया था कि गाड़ी देर से चल रही है लेकिन अभी कुछ देर पहले ही रेलवे स्टेशन के लाउडस्पीकर की सूचना के अनुसार गाड़ी नम्बर 39 डाउन पिछले स्टेशन को छोड़ चुकी है। उसे पिछले स्टेशन से सूरत तक पहुँचने में कितनी देर लगती है इसकी सूचना न थी, फिर उसके पास करने के लिए कुछ था नहीं—खाली दिमाग। अत: उसके मस्तिष्क में अपने प्रेमी से आज क्या पूछना है ऐसे विचारों का ताना-बाना सहजता से बनने लगा।

उसे प्रथम भेंट में अपने प्रेमी से कुछ विशेष आकर्षक जैसी अनुभूति नहीं हुई थी, वैसे भी वह तब अठारह साल की थी और अपनी पढ़ाई में पूरी तरह से तल्लीन। शुरू-शुरू की मुलाकातें केवल पढ़ाई से तनावमुक्त (relax) होने के लिए होती थी। यद्यपि उसका प्रेमी अपनी पूरी पढ़ाई समाप्त करके एक उच्च्व नौकरी पर आसीन हो चुका था। उसने अपनी पत्नी के बारे में चर्चा भी कर दी थी। पत्नी उस समय प्रसव के लिए मायके गई हुई थी। अत: इतवार के दिन शाम को सैर-सपाटे में उसे किसी-न-किसी के साथ घूमने में मज़ा आता था, रात का खाना किसी अच्छे रेस्तराँ में बैठ कर खाने से रात को भोजन बनवाने का झंझट नहीं रहता था, उसे भी बाहर खाना खाना, वह भी किसी अच्छे रेस्तराँ में जहाँ मधुर संगीत चल रहा हो, आनन्ददायक लगता था। दोनों हर रविवार की शाम मिलते-जुलते रहे और कब उन दोनों के बीच मित्रता की गाँठ बँध गई, दोनों को अनुमान शायद ही लगा था। वह अक्सर अपनी पढ़ाई के तनाव की चर्चा खुले दिल से करती, जिसको सहजता से सुनकर उसने कभी भी अनुमान नहीं लगने दिया कि वह उसकी बचकानी किताबी बातों से ऊपर उठ चुका है, एक तरह का संवाद जो पढ़ाई की परेशानियों से भरा हर इतवार सुनकर वह कभी ऊबा नहीं, वह तो उसमें रुचि ही लेता। उसके मनोबल को बढ़ाने के लिए एक शिक्षक की तरह उसका कुशल मार्गदर्शक बनता गया। उसे इतवार की शाम की भेंट और लम्बी यात्रा करते समय अपनी पढ़ाई के गूढ़ विषयों पर प्रकाश मिल जाने से दिनोदिन आत्मविश्वास बढ़ते रहने के कारण उसके प्रति कृतज्ञता और आदर के

अतिरिक्त अन्य कोई भाव न था। अपनी किशोरावस्था की अल्हड़ता के कारण उसे पता भी नहीं चल पाया कि परपुरुष के साथ मित्रता प्रगाढ़ होने पर प्रेम के बीज उपजने लगते हैं। काश उस समय टी.वी. पर ऐसे विज्ञापन आते होते जो आजकल देखने को मिलते हैं 'जवान अवश्य हूँ' पर नादान नहीं। हाथ मिलाकर मित्रता दृढ़ करने का उस समय रिवाज़ नहीं था। दोनों ने बगीचे में घूमते समय या किसी सूने स्थान आदि पर बैंच पर बैठकर एक-दूसरे को छूने का प्रयास नहीं किया था, उसके व्यवहार में वैवाहिक पुरुष की मर्यादा और एक कुशल शिक्षक की शालीनता थी, जिससे विश्वस्त होकर वह उसे 'दादा' कहकर सम्बोधित करने लगी थी। हमारे उस समय के हिन्दीभाषी समाज में भाई-बहन की सन्धि में बँध जाने के कारण जीवन भर उस मर्यादा का निभाने का रिवाज था जो कि गुजरात प्रान्त में आने के बाद उसे पता चला था कि भाई-दादा-नौरोजी बन जाना यह आम बात है और यह कहावत उसके सम्बन्ध में कब चरितार्थ हो गई इसका भान उसके अचानक धृष्टतापूर्ण व्यवहार से लगा था।

एक दिन वह दोनों बैठे बगीचे में गपशप कर रहे थे कि उसने स्नेह से आतुर हो उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "मैं आजकल बेहद अकेलापन अनुभव कर रहा हूँ, काश पत्नी पास होती।"

ये सुनकर वह अवाक हो गई, अपने शरीर को बिजली की करंट लग जाने जैसे आघात से छटपटाते हुए गम्भीर होकर तुरन्त वहाँ से उठकर चल पड़ी। कहने-सुनने की कोई आवश्यकता न थी, वह भी आत्मग्लानि से भरा हुआ लगा था। इसके बाद दोनों ने मिलना-जुलना बन्द रखा। कुछ दिनों बाद होली का त्यौहार आया, ऐसे त्यौहार पर हिन्दीभाषी प्रान्तों में दुश्मन भी गले मिल जाते हैं, यही सोच-विचार कर उसने एक पोस्टकार्ड पर 'होली की शुभकामनाएँ' लिखकर भिजवा दी थी। पोस्टकार्ड पाकर प्रतिक्रिया में उसने अपनी सहयोगी महिला द्वारा धन्यवाद ही नहीं कहलाया, इस बात की पहल की कि वह एक बहुत सज्जन पुरुष है, दफ्तर में हर व्यक्ति उसके भद्र व्यवहार और मृदुभाषी होने की प्रशंसा करता है। अतः वह जल्दबाजी में एकाएक अपनी जान-पहचान को न तोड़ दे, ऐसे अपने हिन्दीभाषी मित्र गुजरात में कहाँ देखने को आते हैं। प्रशंसा के शब्द एक अनजाने उसके सहयोगी से सुनकर वह विश्वस्त हुई और दोनों ने फिर से मिलना-जुलना शुरू कर दिया। मित्रता का ये सिलसिला पूर्ववत् हो गया तब ही एक दिन हँसते हुए वह पूछ बैठा, "पीठ को छू देने में इतना अधिक संवेगित होने की क्या जरूरत है, मैं तो रिक्शे में तुम्हारे नज़दीक ही बैठा होता हूँ, अगर मैं कुछ और शैतानी कर बैठूँ तो क्या करोगी?

"समय आने पर पता चल जाएगा।" गम्भीरता से बात बदलकर वह इस निर्णय पर आ गई कि उसकी पत्नी के आ जाने तक उसे इस बढ़ती मित्रता को विराम देना होगा। इस निश्चय पर वह दृढ़ रही और उसकी पत्नी नवजात शिशु के सहित जब पति के पास आई तब ही वह नवजात शिशु के लिए अपनी भेंट लेकर बधाई देने पहुँची। उस दिन उसके व्यवहार में पहले जैसी ही आत्मीयता थी, उसकी पत्नी और नवजात शिशु की देखभाल करने के लिए साथ में आई हुई उनकी नज़दीकी रिश्तेदार ने आग्रहपूर्वक स्वागत किया। रात्रि का भोज भी करवाया और भविष्य में पढ़ाई से जब कभी उसका मन ऊबे तब उनके गृह का अतिथि सत्कार लेने के लिए अवश्य पधारें। परिवार के सदस्यों ने भी उसे स्नेह सहज भाव से दिया, उनका शिशु भी अपनी नित बढ़ती हुई क्रिया-कलापों से उसका चित्त अपनी ओर खींचने लगा। वह उस परिवार की कब एक सदस्य-सी बन गई उसे पता भी नहीं लग पाया। कितनी बार उनके परिवार में जाने पर वह एक साथ सब पिक्चर देखने चले जाते, बाहर खाना खाकर हँसी-खुशी लौटते, वह उसे सकुशल बस स्टैंड या उसके घर तक पहुँचाकर आता।

एक दिन ऐसी ही भेंट के समय वह हँसकर पूछ बैठा, "क्या तुम मेरे बच्चे की देखभाल कर सकोगी?" कहकर तुरन्त उसने अपने पुत्र को उसकी गोद में दे दिया और शैतान बालक की तरह मुद्रा बनाकर शिशु को सम्बोधित करते हुए कहा, "बुआ के चिकने गालों को अपनी दाढ़ी के बालों से रगड़कर आओ, देखो तब बुआ कितने गुस्से से लाल-पीली हो उठेगी।"

ये सुनकर वह समझ न सकी कि क्या उत्तर दे, किन्तु उसे लगा उसे कुछ तो उत्तर देना ही होगा जिससे वह भविष्य में ऐसी बेहूदी बातें करने का साहस न करे। "आप एक अबोध बालक को कैसी शिक्षा दे रहे हैं।" वह सुनकर निरुत्तर था। उसी समय उसकी पत्नी ने आकर भोजन करके जाने का आग्रह किया जो वह चाहकर टाल न सकी। भोजन के बाद वह वहाँ से तुरन्त जाने की तैयारी में थी कि उसकी पत्नी ने पुनः स्नेहवश आग्रह किया, "ये जाकर तुम्हें घर तक छोड़ आएँगे, अभी रात ज्यादा नहीं हुई है, लेकिन लगता है तुम अपनी पढ़ाई के कारण जल्दी जाना चाह रही हो।"

बाहर आकर दोनों चुपचाप चल रहे थे, समझ में नहीं आ रहा था कौन क्या बोले। कोई रिक्शेवाला भी दिखलाई नहीं पड़ रहा था। पैदल चलते-चलते उसने चुप्पी तोड़ी "आज सवारी मिलना मुश्किल हो रहा है, मेरी समझ में मेरे घर पर लौट चलो, कल सुबह-सुबह चली जाना।" सुनकर वह बोल उठी, "आप लौट आओ, मैं अकेले ही चली जाऊँगी, काफी रास्ता तय हो चुका है, फिर आपको अकेले पैदल ही लौटना पड़ेगा, अच्छा फिर मिलेंगे।"

''नहीं, बीच रास्ते में इस समय तुम्हें नहीं छोड़ सकता, चलो कहीं बैठकर थोड़ी देर आराम करते हैं। सामने एक बगीचा है जिसमें मैं सुबह की सैर करते हुए एक-आध बार आया हूँ। चलो, वहीं पर बैठकर सुस्ता लिया जाए।'' कहते हुए वह उस ओर मुड़ गया, उसके साथ पीछे-पीछे चलने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं रहा। एकान्त बेंच पर बैठकर एकाएक सर्प की भाँति अपने आलिंगन पाश में बाँधते हुए उसने बलवत् अपने और उसके अधरों से चुम्बन लेते हुए फुसफुसाकर कुछ कहा जो अत्यधिक क्रोध, प्रतिशोध, अपमान आदि की भावना के कारण उसे सुनाई नहीं पड़ सका। उसके मुँह से केवल इतना ही निकला, "you brutal devoid of human feelings" (तुम पाशविक हो, तुम मानवीय संवेदनाओं से परे हो)। अपने को बन्धन से छुड़ाकर वह भागने लगी, वह भी भागकर पकड़ने की कोशिश में लड़खड़ाकर गिर पड़ा और उसके सीधे पैर में चोट आ गई। खिसियाकर बोला, ''अच्छा हुआ, मुझे अपने अभद्र व्यवहार की सज़ा मिल गई, लगता है यह चोट काफ़ी गहरी है, मुझे कोई सवारी में बिठा देने की कृपा करो।''

कैसे इतना शालीन-शिष्ट पुरुष पशुवत् जैसा कामुक व्यवहार कर सकता है, फिर संयत हो इतनी जल्दी कातर क्षमायाचना भी कर सकता है? लेकिन उस समय क्रोध और प्रतिशोध के अलावा उसे कुछ नहीं समझ में आ रहा था, वह उसे वैसा ही छोड़कर वापस आ गई। मानो उसकी पूजा की थाली को किसी आवारा लड़के ने धूल धूसरित कर दी हो और उसके आराध्यदेव ने तुरन्त उसके पैर में चोट लगाकर उचित दंड दे दिया, इस पूरे हादसे को भुलाकर भी वह भुला न सकी थी। एक साल की चुप्पी के बाद पता चला कि ऐसा अनुचित व्यवहार जब उसकी पत्नी ने सुना, वह भी अपने पति को क्षमा न कर सकी। चोट गहरी आई थी। प्लास्टर लगवाकर घर लौटने पर पत्नी से अपनी सफाई में क्या कहता, सच-सच घटनाचक्र बता देने के अतिरिक्त। पति-पत्नी में तनाव दिनोदिन बढ़ता गया, समाप्त करने के प्रयास में उसने अपना ट्रांसफर दूर शहर में करवा लिया, फिर भी गहरी दरार विश्वास में आ जाने के कारण दोनों मन-ही-मन घुटने लगे। निराश होकर उसने निश्चय कर लिया कि वह प्रेमिका से जाकर क्षमायाचना की माँग करेगा और उसे दम्पती का गौरव प्रदान करेगा। शायद गौरव देकर उसे प्रेमिका मिल जाएगी, पत्नी का भार वह पूर्ववत् ढोने में समर्थ है, पत्नी और अपने बच्चे की आर्थिक सहायता और उचित पालन-पोषण के प्रति अपनी इस प्रेमिका की ओर से वह विश्वस्त था। इसी प्रस्ताव को लेकर वह जब आया तब प्रेमिका उसका अनुबन्ध सुनकर अवाक थी। लेकिन उसके चेतन मन से क्रोध और प्रतिशोध समय के अन्तराल में खो गया था, वह अपनी पढ़ाई में उस समय अति व्यस्त थी, कुछ दिनों बाद ही उसकी परीक्षा होने

वाली थी। दोनों युगल प्रेमी रात के अन्तिम पहर तक सड़कों पर घूमते रहे और भावनाओं से कर्तव्य ऊँचा होता है, या विश्वास ही इस समय सर्वोपरि है, इस विषय पर चर्चा करते रहे। निष्कर्ष बौद्धिक धरातल पर निकल न सका किन्तु दोनों के बीच रसायन (Chemistry) मिल गई जिसे प्रेम का अनुबन्ध कहते हैं जो मानवीय आकर्षण की परिणति होता है।

सहसा उसका ध्यान प्लेटफार्म पर उठी हलचल पर गया, यात्रीगण अपना-अपना सामान सहेजकर ट्रेन आने की प्रतीक्षा में खड़े होकर उतावले हो रहे थे, तब ही दूर से गाड़ी की गड़गड़ाहट सुनाई दी, सुपरफास्ट (अति तीव्रगामिनी) होने के कारण मानो पूरा प्लेटफार्म खड़ा होकर उसका अभिवादन कर रहा हो। ट्रेन आने के बाद उसको विश्वास था कि उसका प्रेमी स्वयं ढूंढ़ता हुआ उसके पास आएगा, वह क्यों डिब्बों के पास जाकर ढूँढ़ती फिरे। यात्रीगण ट्रेन की प्रतीक्षा में बेहाल हो रहे थे फिर भी गुजरात में कम सामान लेकर चलने का रिवाज है, इसलिए जिनको सूरत में उतरना था और जिनको आगे जाने के लिए ट्रेन पकड़नी थी उनके बीच कोई धक्कामुक्की नहीं हुई। ट्रेन अपने निर्धारित समय पर रुककर आगे की यात्रा पर प्लेटफार्म छोड़ चुकी थी, लेकिन दूर-दूर तक उसे अपना प्रेमी आता हुआ नहीं दिखलाई दिया। वह उठकर प्लेटफार्म के एक कोने से दूसरे कोने तक देख आई, कहीं भी वह दिखलाई नहीं दिया, खीज़कर अब दूसरी बम्बई से आने वाली ट्रेन का इन्तजार करने के अलावा उसके पास कोई विकल्प न था। उसे लगने लगा इस तरह बड़ौदा से भागकर सूरत आने की नादानी उसे नहीं करनी चाहिए थी। बम्बई से दिल्ली जाने वाली इस लाइन पर सूरत के बाद बड़ौदा भी तो आता है, फिर उसने उसे अकेले आने का वह भी 20,000 रुपए जैसी मोटी राशि को लेकर, क्योंकर ये सन्देश भेजा? उसकी बेचैनी इन प्रश्नों के अलावा अपनी सुरक्षा के प्रति भी थी, रेलवे स्टेशन पर रात को सुनसान बढ़ते देख वह मन-ही-मन भयभीत हो उठी, किससे अगली ट्रेन की पूछताछ की जाए? कई टी.टी. बातचीत करते हुए प्लेटफार्म पर दिख तो रहे थे परन्तु उसे लगने लगा वह घूर-घूरकर उसे देख रहे हैं, उनसे पूछना अपने को दयनीय स्थिति में डालना होगा। किसी कुली से पूछना ठीक रहेगा किन्तु इस समय दूर-दूर तक कोई कुली भी दिखलाई नहीं दे रहा था। वह कुली की प्रतीक्षा में प्लेटफार्म नं. 2 पर ही बैठी रही। कुछ देर बाद साहस करके उसने एक टी.टी. से ही पूछ लिया, ''अब कौन-सी ट्रेन बम्बई से आने वाली है जो सुपर...।''

''अभी तो कुछ देर पहले ही एक ट्रेन जो लेट (देरी से) चल रही थी गई है। आप उसमें क्यों नहीं बैठीं?'' आपका टिकट कहाँ का है? देख रहा हूँ कि आप

काफी समय से इस प्लेटफार्म पर बैठी इन्तजार कर रही हैं। फिलहाल तो कोई ट्रेन नहीं आने वाली, लेकिन करीब रात के 1 बजे एक ट्रेन इसी प्लेटफार्म पर आएगी, क्या आपके पास टिकट ...।

इन प्रश्नों की बौछार से बचने के लिए उसने संयत स्वर में कहा, "धन्यवाद। मैं 1 बजे तक उस ट्रेन का इन्तज़ार करूँगी। अवश्य ही उस ट्रेन से मेरे पति आ रहे हैं, शायद पहली ट्रेन टाइम से न चलने के कारण और सुपरफास्ट होने के कारण वह पकड़ने में असमर्थ रहे होंगे।"

टी.टी. ने कोई और जानकारी लेने की कोशिश न की, लेकिन उसे सिर से पैर तक घूरता हुआ चला गया, जो स्वाभाविक ही था, क्योंकि उसकी वेशभूषा में ऐसा कोई चिह्न न था जिससे पता चले कि वह विवाहित है।

इन्तजार की घड़ियाँ लम्बी होती हैं फिर वह भी जब मस्तिष्क पुरानी यादों की वीथियों में उलझ-उलझकर थक गया हो, उसने रात्रि का भोजन भी नहीं किया था ऐसे में चाहकर भी उसकी आँखों में नींद नहीं आ रही थी। पढ़ने को साथ में कुछ नहीं लाई थी, ऐसे में उसे लगने लगा कि उसे इस प्रेम में विश्वास नहीं है, इसकी परिणति क्या होगी जो शुरू से इन्तजार की घड़ियों को गिनने में बीत रहा हो। समय की गति अपने-आप चलती जाती है, क्योंकि ट्रेन यथासमय आई और उसकी घबराहट को थाम मिली जब उसका प्रेमी मुसकराता हुआ उसके पास आकर प्रेमपूर्वक उसके पास रखे हुए थैले को उठाकर क्षमायाचना करने लगा, "आज मेरा और तुम्हारा बहुमूल्य समय बरबाद हो गया। मेरी पत्नी बम्बई तक साथ आई थी। उसे अपनी बहन के बेटे के घर पहुँचाकर मैंने इस ट्रेन को किसी तरह पकड़ा, मुझे पूरा विश्वास था कि तुम मुझे इन्तज़ार करती हुई सूरत के स्टेशन पर मिलोगी, तुम्हें अकेले इतनी रात तक इन्तजार करना पड़ा, क्षमा करना, मेरी प्यारी स्मार्ट श्रीमती वर्मा।"

"सप्तपदी लिए बिना ही पति के अधिकार जमाने में आपको शर्म नहीं ..." आगे वह बोल न सकी, उसका मूड बिगड़ गया था। पुरानी यादों का सैलाब जो कभी का शान्त हो मन की तह में बैठ गया था, फिर से उद्वेलित हो उठा। क्रोध और प्रतिशोध की भावना उठ पड़ी मानो जैसे छड़ी से तालाब को कुरेद देने से नीचे ज़मीन की सतह में बैठी जमी हुई काई को किसी ने उभार दिया हो।

"इसे अब कोई भी कहने से नहीं रोक सकता, तुम भी नहीं।" कहकर वह गर्व से स्टेशन से बाहर निकलकर सवारी की तलाश में व्यस्त हो गया। एक जिम्मेदार पुरुष की तरह।

क्योंकि अभी भोर होने में देर थी।

❑

तनाव

वह प्रतिदिन मेरे पूजागृह में आकर वहाँ चढ़ाया हुआ फल लेकर भाग जाती थी। मुँड़ेर पर बैठकर कुछ खाती कुछ कुतरकर बिखरा जाती जो बगीचे में बीन–बीनकर गिलहरी रानी संचित कर लेतीं, शायद खाती भी होगी। उनकी चपलता से मोहित होकर मैं दूर से बैठकर यह तमाशा देखती। पता था कि जानवरों को मनुष्यों की तरह सोचने–समझने की, याद रखने और सीख–समझकर व्यवहार की शक्ति नहीं होती फिर कैसे यह बन्दरिया नियत समय पर निडर हो चढ़ाया हुआ फल ले जाती और अपना भाग लेकर पेड़ पर चढ़ सन्तुष्ट हुई अन्य के लिए पेड़ के नीचे खाना छोड़कर चली जाती है ? मेरी यह जिज्ञासा रोज़मर्रा की आम बात होने के कारण दबी रही, लेकिन एक दिन वह अपने चपल नवजात शिशु को लेकर पूजागृह में घुसी तो मुझे उस पर गुस्सा आ गया, माँ–बेटे मिलकर पूजागृह को अवश्य ही उल्टा–पल्टा देंगे यह मेरा सहज अनुमान था, किसी तरह उनको बाहर निकालकर मैंने दम लिया। वह बन्दरिया मेरे से भयभीत होने वाली न थी। पूजागृह उसके लिए जानी–पहचानी जगह थी, वहाँ का चढ़ावा भी मानो उसका अधिकार था। वह दूसरे दिन भी निडर हो दबे पाँव पूजागृह में घुसकर चढ़े हुए फल को कब ले गई, इसका मुझे पता भी नहीं चल पाया। मुझे मन–ही–मन उसकी धृष्टता पर गुस्सा आया, परन्तु बचपन की सुनी हुई एक कहानी याद आ गई।

एक बन्दर और मगरमच्छ की दोस्ती थी जो दोस्ती दिनोंदिन बढ़ती गई। सैर–सपाटे के लिए बन्दर मगरमच्छ की पीठ पर सवार होकर नदी के इस पार से दूसरे पार जाता, वहाँ पहुँचकर बन्दर एक जामुन के पेड़ पर चढ़ जाता और मीठे–मीठे जामुन के फल तोड़कर खाता और नीचे गिराकर अपने दोस्त मगरमच्छ को भी खिलाता। दोनों नदी के इस पार से उस पार मीठे जामुन के फल खाने जाते और बन्दर पीठ पर चढ़ा हुआ मगरमच्छ को मजेदार किस्से–कहानी सुनाता और मगरमच्छ का हँसा–हँसाकर पेट फुला देता। एक दिन नदी के पार जामुन खाकर दोनों मित्र हँसते–हँसाते बीच मँझधार तक पहुँचे थे कि मगरमच्छ के मन में लालच आ गया, उसे लगा यह बन्दर इतनी रसीली बातों से मेरा मन मोह लेता है तो इसका कलेजे का स्वाद कितना स्वादिष्ट होगा। वह लालच को रोक न सका, उतावला होकर बोला, ''बन्दर दोस्त, अब मैं तुम्हें इसी नदी के बीच डुबाने वाला हूँ। तुम्हारी बातों से मैं

बेहद खुश होकर अब तुम्हारा कलेजा खाना चाहता हूँ।''

''अरे भाई! मेरे मित्र मगरमच्छ, यह बात तुम्हें नदी के पार जामुन खाते समय बतलानी चाहिए थी, मैं तो अपना कलेजा जामुन के पेड़ पर छोड़ आया हूँ। आज तो तुम मुझे पार कर दो, कल जब हम नदी के पार जामुन खाने जाएँगे तब वहाँ से मैं अपना कलेजा उतारकर ला दूँगा, तुम उसे खा लेना।''

मगरमच्छ इस दलील को सुनकर चुप रहा, उसे विश्वास था कि उसका मित्र बन्दर ठीक ही कह रहा होगा। वह उसे कल शायद अपना कलेजा लाकर सौंप देगा, इस समय नदी से चुपचाप तैरते हुए तट पर पहुँच जाना उचित है।

बन्दर ने अपनी चालाकी से मगरमच्छ को नदी के तट तक पहुँचाने के लिए बाध्य किया। जैसे ही दोनों तट पर पहुँचे बन्दर कूदकर एक पेड़ पर चढ़कर हँसने लगा। वह हँसी इतनी विद्रूप थी कि मगरमच्छ को लगा कि उसने कोई नादानी कर दी है, वह भोलेपन का आवरण पहनकर पूछ बैठा, ''क्यों हँस रहे हो?''

''अरे मूर्ख! मेरे दोस्त, कोई अपना कलेजा उतारकर पेड़ पर रख सकता है? मुझे आज के बाद ऐसे मूर्ख से दोस्ती नहीं रखनी,'' कहकर बन्दर हँसता हुआ एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर लाँघता हुआ भाग गया।

मुझे बन्दर की अक्लमन्दी की कहानी अपने पूजागृह में चरितार्थ होती लगने लगी। मुझे पूजागृह से गर्भवती बन्दरिया का फल लेकर खाना और खिलाना आपत्तिजनक नहीं लगा था। नारी होने के कारण मुझे लगा कि पौष्टिक आहार की आवश्यकता की दृष्टि से उसका ही पहला अधिकार है, वैसे वह भी पूजागृह में कोई चीज को नहीं छूती, चुपचाप फल लेकर चली जाती रही, लेकिन उसके चपल बच्चे के बारे में अत्यधिक सशंकित थी। अत: मैं माँ-बेटे को पूजागृह में घुसने का अधिकार कैसे दे देती? मैंने देवता को फल चढ़ाना बन्द कर दिया और पूजा के बाद खिड़की-दरवाजे आदि को बन्द करना शुरू कर दिया। दिन शान्ति से गुजरने लगे। यह बात अक्सर गृहस्थ जीवन में देखी-सुनी-सी है, लेकिन मेरे हृदय में एक दारुण पीड़ा-सी बन गई जब मैंने देखा कि वह बन्दरिया अपने मृत शिशु को छाती से लगाए हुए मेरे पूजागृह के बन्द किवाड़ के सामने बैठी हुई है। एक चपल शिशु-लीला इतनी छोटी अवधि में समाप्त हो गई और मैंने अपने पूजागृह के चढ़ावे को न देकर मानो उस माँ के अधिकार को छीन लिया है जो मृत सन्तान को अपने कलेजे से हटाने को तैयार नहीं है। कहते हैं बन्दरिया अपना बच्चा नहीं छोड़ती, हाड़ को चिपकाए रहती है जब तक वह स्वयं कहीं गिर न जाए। मातृत्व की सहज प्रक्रिया सब ही जीवधारियों में है, माँ-बाप दोनों ही इस कटिबद्धता को अपनी-अपनी तरह से निभाते हैं। मोहल्ले के आवारा कुत्ते, कुतिया भी इसको कैसे निभाते हैं यह देखकर एक दिन मैं अवाक् थी।

मेरे घर के जीने में एक गर्भवती कुतिया और उसका साथी कुत्ता आकर बैठ जाते, भगाने पर कुछ देर के लिए भाग जाते लेकिन जब जीना सूना पाते आकर अपना अधिकार जमा लेते। एक दिन सुबह-सुबह सड़क पर पड़ी बालू की ढेर पर उस कुतिया ने प्रसव कर दिया। वहाँ उसके साथी कुत्ते का कहीं अता-पता न था। बेचारी अकेली पड़ी कुतिया के स्तन से चिपके नवजात शिशु जिनकी अभी आँख भी नहीं खुली थी, पड़े हुए थे और कुछ दूर पर कुछ मरे हुए शिशु भी थे। कुतिया उदासी की स्थिति में अत्यन्त दुखी थी, उसे मोहल्ले के सुबह सैर पर जाते लोगों ने देखकर हैरान होने के अतिरिक्त कुछ अधिक संवेदना प्रकट करना उचित नहीं समझा। मैंने दुखित होकर उस कुतिया के पास दूध और डबलरोटी तोड़कर उससे भरा कटोरा सामने रख दिया, लेकिन नवजात मृत शिशु के दुख से पीड़ित प्रसूति माँ किसी भी प्रकार का प्रलोभन से भरा आकर्षण सहन न कर रही थी। भूख-प्यास से अधिक उसके मन में नवजात शिशुओं की मातृत्व भरी करुणा उपज रही थी। मेरे भरसक प्रयत्न उस कुतिया को उस पीड़ा से उबार पाने में असमर्थ रहे। जब सूर्य की तपसभरी गर्मी ने आकर उस व्यथित माँ को उद्वेलित किया तब कहीं वह पास रखे दूध, पानी और डबलरोटी के टुकड़ों को खा अपने जीवित बच्चों को लेकर किसी सुरक्षित स्थान की ओर चल दी। मुझे पता भी नहीं चल पाया। हम ऐसी स्थिति को जो रोटी, कपड़ा और मकान की आपा-धापी में अति व्यस्त होने के कारण देख भी नहीं पाते कि हमारे बीच रहते हुए जीवधारी कैसे अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं, वह कितने अधिक तनावपूर्ण कठोर वातावरण में जी रहे हैं। क्यों हमारे आस-पास के वातावरण में नर-नारी आतंकवादी बन इस इक्कीसवीं सदी की वैज्ञानिक एवं आर्थिक प्रगति में अपनी अन्धी धर्मभक्ति और राजनीतिक जनून में नए-नए मुखौटे लगाकर आत्मघाती प्रहार कर देते हैं ?

मुझसे मेरी पड़ोसिन ने पूछा, ''वह कुतिया अपने दो नवजात शिशु को लेकर कब कहाँ चली गई इसका कुछ अता-पता लगा ?'' लेकिन मेरे उत्तर को अनदेखा करते हुए कहा कि उन्होंने दया करके मृत शिशुओं को अपनी सफाई कर्मचारी बीना द्वारा उठवाकर किसी सूनी जगह पर गड़वा दिया है और उससे आग्रहपूर्वक कह दिया था कि वहाँ पर वह अवश्य दो फूल चढ़ा दे। अवश्य ही उनका दिया हुआ ठंडा पानी और दूध पीकर कुतिया ने अपने जीवित शिशुओं की सुरक्षा की खोज में कोई अन्य स्थान को अब तक ढूँढ़ लिया होगा। लेकिन उसका साथी कुत्ता बार-बार हमारे जीने और पड़ोस में आकर लगातार अपनी कुतिया और बच्चों को ढूँढ़ता-फिरता दिखलाई देता। यही नहीं वह रात में आकर अपनी व्यथा एवं आक्रोश व्यक्त करता, आकाश की ओर मुँह उठाकर दुहाई माँगता हुआ हमारी नींद उचाट देता।

❒

पारिजात पुष्प

मेरा किशोर मन जिसमें अभी बुद्धि की परिपक्वता का अभाव है किन्तु एक दिन कक्षा में बैठी सहपाठी का स्नेह से भरा हाथ मेरे हाथ पर रख देने से मन में लालसा जाग उठी। कुछ समय से चली आ रही मेरी इस मनोदशा को घरवालों ने पता नहीं कैसे समझ लिया और मुझे डाँटते हुए सचेत किया कि, "अपना मन पढ़ाई में लगा लो, अच्छे नम्बर मिलने पर ही भविष्य में कुछ बन सकोगे, तुम्हारे लिए दसवीं कक्षा में प्रथम आना जरूरी है, अब तुम खेल-कूद, टी.वी., सैर-सपाटा छोड़कर पढ़ाई में मन लगाकर जमकर पढ़ो, मौज-मस्ती के लिए पूरी जिंदगी पड़ी है।"

यह बातें सुनकर मेरा किशोर मन भड़क उठा। प्रतिवाद में कह उठा, "आप लोग कहाँ मौज-मस्ती कर पा रहे हैं? पिताजी दफ्तर से आते ही सब पर बे-बात बरस पड़ते हैं। बड़ी बहन जी उनकी इच्छा के लिए डॉक्टरी पास कर रही हैं लेकिन दिन-रात रोगियों से घिरे रहने की वजह से वह खुद एक मशीन की तरह काम करने लगी हैं, मोटी-मोटी किताबें पढ़ना, आए दिन परीक्षा की तैयारियाँ करना, घर आकर उसका रोना-धोना, ऐसी एड़ी-चोटी की पढ़ाई करना, मेरे बस की बात नहीं, माँ।"

माँ ने कड़े शब्दों में आदेश किया, छोटा मुँह बड़ी बातें करना बस सीख लिया है, आज से तुम्हारा बन-ठनकर शीशे के पास अपनी शक्ल निहारकर बाल सँवारना बन्द। देखती हूँ तू कैसे मन लगाकर कल से पढ़ने नहीं बैठता।" कहकर वह चौके में चली गई।

मैं अपने-आपको सदा से हँसमुख समझता आया था, पिताजी की डाँट से मैं कभी भी विचलित नहीं होता हूँ। मुझे उनकी बातों पर गुस्से से अधिक उन पर तरस आता था, माँ ने मुझे ऐसे प्रतिबन्ध में कभी भी नहीं बाँधा। माँ अचानक क्यों इतनी कठोर हो रही हैं? मेरी छोटी-सी खुशी कि मैं शीशे के पास अपनी आकृति को निहार सकूँ वह भी उसे सहन नहीं है, घर क्या है, यह तो जेलखाना है। अपनी स्वतन्त्रता की खोज में मेरे पैर अनायास घर से बाहर निकल पड़े।

पूरे दिन मैं सड़कों की दूरी पार करता रहा, थककर पास ही बगीचे में आराम करने के लिए एक बेंच पर बैठ गया, मेरे मन में उत्साह और उमंगों की लहरें

उठतीं–गिरतीं। इस स्वतन्त्र वातावरण में लगता हर सुन्दर चीज़ पर मेरा आधिपत्य होना चाहिए, शायद इसी कारणवश अपने चेहरे को दिन में बार–बार शीशे में देखने लगा था। इधर चेहरे पर कुछ छोटे–छोटे दाने भी उभर आए थे जिन्हें देखकर मन बेचैन हो उठता है। उन्हें नोंचकर निकाल फेंक देने के चक्कर में वह दाने कई जगह से उभरने लगे हैं। उनके तुरन्त उपचार के लिए मेरा अन्तरमन खोज रहा है, उसी तरह भटक रहा है जैसे मैंने सुन रखा है कि पारिजात पुष्प को लगाकर सत्यभामा (कृष्ण की पत्नी) को लगा कि वह रुक्मिणी (कृष्ण की दूसरी पत्नी) से अधिक रूपमती हो उठेगी। खैर वह तो एक पौराणिक कथा है, इसमें सन्देह नहीं कि यदि मैं रूपवान बन जाऊँ तो अपने क्लास की अच्छी–से–अच्छी सहपाठी को अपनी ओर आकर्षित कर लूँगा, यह मेरा भ्रम नहीं है यह तो मेरा पूर्ण विश्वास है जो चेतना से हटता नहीं है। अपने व्यक्तित्व का विकास एवं पूरा निखार करके, कितने ही लोग सिनेमा जगत में नाम और पैसा कमाते हैं। बगीचे में बैठे–बैठे मैंने अपने भविष्य की योजना बना ली, कैरियर काउंसिलिंग (Career Counselling) करने की मुझे क्या आवश्यकता? रात में सिर छुपाने की आवश्यकता ने मुझे घर वापस आ जाने के लिए बाध्य कर दिया। घर आने पर माँ ने चुपचाप दरवाजा खोल दिया शायद मेरे चेहरे पर दिन भर की थकान को देख वह सहम गई थी, और उधर उन्हें पिताजी की क्रोधाग्नि का डर रहा होगा।

भविष्य की योजना से आश्वस्त होने के कारण मेरा मन पढ़ाई–लिखाई से हट गया था, फिर भी न जाने क्यों एक तरह की बेचैनी छाई रहती थी, अपने अपने नहीं लगते और जो बिल्कुल अनजाने से थे वह अपने आत्मीय सूत्र में बँध गए। मेरा आकर्षण केन्द्र मेरे समय के विशिष्ट सिनेमा सितारों की ओर था, उन्हीं के पोस्टर लगाकर मैं अपने कमरे को सजाता, मेरा पहनावा, चाल–ढाल सब उन्हीं की तरह होने लगी और अपने कुटुम्ब की सभ्यता, मान–मर्यादा, आचार–विचार से अजनबी बनता गया। इस बदलाव ने मुझे घर में रहते हुए मानसिक रूप से काट कर रख दिया। बेचैनी ने मेरी भूख और नींद पर प्रहार करना शुरू कर दिया। कभी नींद आती नहीं, रात भी करवटें बदलते रहकर जब भोर में आँख लगती तब सूरज आकाश में चढ़ गया होता, इसकी किसे खबर! केवल माँ की आवाज की चीख से आँख खुल पाती —

"आज फिर स्कूल की छुट्टी ... दिन कितना चढ़ गया है और तू कुम्भकरण की तरह पड़ा सो रहा है, सूरज की तेज रोशनी पूरे कमरे में फैली हुई है, ऐसे में पता नहीं तू आलसी कैसे सो रहा है?"

ऐसी बातों को सुनकर सहन करने के लिए चिकना घड़ा होना ही पड़ता है। मैंने निश्चय किया अपने शरीर को स्वस्थ और सुन्दर बनाने के लिए मुझे सुबह उठकर सैर करने और जिम जाना चाहिए। कसरत से नींद ठीक-ठाक रहेगी। लेकिन मेरा मनोबल न जाने क्यों टूट रहा था। नींद थी कि लाख कोशिशों के बाद भी ठीक से नहीं आ रही थी। सोचा चलो नींद न आने पर रात में पढ़ाई की जाए, लेकिन जब भी मेज पर बैठकर पढ़ाई करता तब आँखों में नींद समाने लगती, एक बार तो नींद का ऐसा झोंका आया कि सिर मेज पर फटाक से लगा। इसका आभास मुझे चोट लगने के बाद ही हुआ। परेशान होकर मैं पलंग पर आकर लेट गया। चोट से माथा चकराने लगा, फिर नींद कहाँ गायब हो गई पता नहीं चल पाया।

अक्सर मैंने आकाश के तारों को गिनने की कोशिश की है। जब रात नींद नहीं आती तब आकाश में चाँद-सितारों में मन उलझ-उलझकर किसी अज्ञात सम्मोहन का शिकार हो जाता। मुझे पता नहीं वह मेरा किसी पारिजात पुष्प या किसी सुन्दरी का सम्मोहन है जो मुझे खींचता है। आकाश में मुझे मेरी सहपाठी का मुस्कराता चेहरा अत्यन्त लुभावना लगता, फिर ऐसे में नींद किसे आती है। घरवालों को मेरे इस नए शौक का पता न चले, मैं इसीलिए आधी रात को अपने कमरे में चुपचाप आकर पलंग पर निढाल लेट जाता। अँधियारे में इन्द्रियजनित सुख में लिपटे रहना, मानो मेरा मन इन्द्र की पत्नी 'शचि' (जो पारिजात पुष्प के वृक्ष को किसी भी शर्त पर स्वर्ग से श्रीकृष्ण को देने के लिए राजी न थी) बन जाता। पत्नी के हठधर्म के कारण इन्द्र को कहना पड़ा था, ''हे कृष्ण, पारिजात मेरा है।'' और फिर इन्द्र टस-से-मस न हुए और इस विवाद से श्रीकृष्ण और इन्द्र में भयंकर युद्ध हो उठा। इन्द्रियजनित हस्तमैथुन में मुझे आत्मतुष्टि मिलती। अन्तरतम से लगता एक हूक उठती, कल्पना के स्वप्निल जाल में जीवन उल्लास बढ़ता आता, क्षितिज पर उगता हुआ भोर मानो सूर्योदय पर मेरी प्रिया का अनुराग साकार लगता, मुझे लगता यही मेरा पारिजात पुष्प है, इसे पाने के लिए मैं जन्म-जन्मान्तर से भटक रहा हूँ।

सुबह होते, घर की आपाधापी को सुनकर वास्तविकता के धरातल में आते ही मेरे पैर उखड़ जाते, मैं पढ़ाई से पलायन कर रहा हूँ, मैं क्या बन पाऊँगा? जीवन लक्ष्य क्या होगा? इस तरह के नादान प्रश्न उठकर मुझे उन्माद-अवसाद के झूले पर बैठा देते, अपने मनोबल को स्थापित करने के लिए मेरा अहं, मन, चेतना, अर्धचेतना, अचेतन की परतों को खोलकर रख देता, जिसमें चारों ओर बेचैनी के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझ पाता, केवल वर्तमान में जो सुख मिल रहा है उसे पूरी तरह भोग लेने की कटिबद्धता स्थिर रह पाती। शायद उसी की आदत का मैं अभ्यस्त हो चला हूँ। यौवन के पदार्पण की सीमा कहाँ तक जाकर मुझे बड़ा आदमी बना देगी, क्या मुझे

भी आम आदमी की तरह गृहस्थ जीवन की पटरी पर अपने जीवन की गाड़ी को लगा देना पड़ेगा, शायद तब ही मुझे बड़ा आदमी बन जाने का पद मिलेगा, नहीं-नहीं, वह तो भारत जैसे विशाल देश में अन्धे-लूले-लँगड़े सबको अपना गृहस्थ जीवन बसा लेने के बाद मिल जाता है, मैं आम आदमी की तरह नहीं बनना चाहता। नाना प्रकार के तर्क-वितर्क देने की मुझमें अपार क्षमता है, कहते हैं, ''यौवन में मान धना'' जिसका प्रेरक इन्द्र है, अर्थात् मन है जिसे सत्य पर मायाजाल का रुपहला पर्दा चढ़ाने की दक्षता प्राप्त है। इन्द्र के पुत्र ने ही तो सीता मैया की सुन्दरता पर मोहित होकर कौवे का रूप धारण कर उनके पैर के अँगूठे पर अपनी चोंच मार देने की धृष्टता की थी, उसी तरह मेरा मन भी बहिरमुखी इन्द्रियजनित सुस्वादों की ओर खिंचा जा रहा है, उस आनन्द में मस्ती, निश्चिन्तता, उन्मुक्तता के क्षणों को साकार करने के बाद वास्तविकता के धरातल में क्यों इतना अधिक सन्देह, ईर्ष्या, द्वेष, भय आदि का आतंक छा जाता है? गीता में लिखा है कि इस द्वन्द्व से निकलने के लिए 'स्थितप्रज्ञ' होना चाहिए, मायारूपी जाल से निकलकर आत्मरूपी श्रीकृष्ण को पकड़ लेना चाहिए, फिर क्यों मुझे इन्द्रियजनित आनन्द और कर्मजाल में फँसा देते हो, क्या मुझे इस द्वन्द्व से छुटकारा लेने के लिए किसी गुरु की शरण में जाना चाहिए? क्या मैं भी संन्यासी बन जाऊँ?

अपने को इस द्वन्द्व से मुक्त करने के लिए मैंने गुरु की खोज की लेकिन वहाँ भी यही उपदेश मिला, ''साधारणतया कोई भी मनुष्य किसी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता, सभी प्राणी प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों के परवश हैं और कर्म करते रहते हैं अतएव कर्ममार्ग को त्यागना न उचित है न सम्भव है।'' गुरु जी ने मुझसे पूछा, ''ऐसी स्थिति में विरला व्यक्ति कौन कहलाएगा? वह व्यक्ति जो प्राकृतिक सहज कर्मों को करता हुआ भी अपने को 'अकर्ता' मानता है। वह महारथी अर्जुन-सा जो सबको मारकर भी, नहीं मार रहा, आत्मनिष्ठ, अनासक्त हो रहा है। बच्चा, जिसने कर्म को तो अकर्म से त्याग दिया और संन्यास धारण कर लिया लेकिन मनसा, वाचा, कर्मणा को अन्तरमुखी न कर सका, वह कब कृष्णरूपी पारिजात पुष्प को प्राप्त कर सकता है। जो मनसा अर्थात् इन्द्र को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से स्वधर्म का पालन करता है, वही विरला बन पाता है। गीता का निष्काम कर्म का यह उपदेश भयानक युद्धस्थल में दिया गया है। वेदव्यास जिसने इस संवाद को लिखा है उसकी अनेक टीकाएँ देश, विदेश में उपलब्ध हैं लेकिन वेदव्यास ने भूमिका में मनुष्यों को सचेत करते हुए ठीक ही लिखा है कि ''तुम मेरे इस ग्रन्थ की पूजा तो करोगे, मुझे ठुकरा न सकोगे लेकिन हजारों वर्षों तक तुम जान भी न पा सकोगे कि मैंने रहस्य ग्रन्थ में कहा क्या है।'' गुरु जी कहकर मौन हो गए।

मैं अधीर हो उठा, गुरुजी से निवेदन या अपने-आपसे पूछ बैठा, "लेकिन सत्य तो वह है जो सबको सरलतम तरीके से भासने लगे, जो समझ लेने पर अन्तरमन में उठे विचारों के तूफान पर रोक लगा दे, उसके लिए क्या हर व्यक्ति के बुद्धिस्थल पर इन्द्ररूपी मन, इन्द्रिय और कृष्णरूपी आत्मा में युद्ध होना क्या आवश्यक है?"

गुरुजी ने अत्यन्त कातर भाव से विह्वल होकर मानो वह स्वयं उस युद्ध में अवरत हैं कहा, "पारिजात पुष्प उसी को मिलेगा, इन दोनों के युद्ध में जिसकी जीत होगी। यही सत्य का निरूपण चेतना का सतत विकास कराता है, गीता का यह रहस्य स्वयं नारद मुनि ने गाकर सुनाया। कहते हैं बारह लाख श्लोकों को देवलोक में नारद ने, तीन लाख श्लोकों को शुकदेव ने पितृलोक में, एक लाख श्लोकों को केवल गीता के रूप में मृत्युलोक में हम प्राणियों के हित के लिए प्राप्त हैं।"

"गुरुजी, मेरे लिए क्या मार्गदर्शन है?" कम्पित स्वर में मैं पूछ बैठा।

"बच्चा लौट जा, किशोरावस्था में पूर्ण शिक्षा ग्रहण कर नौकरी-धंधे में लग, गृहस्थ जीवन का सुख भोग कर, फिर वानप्रस्थ में जा और विचार कर संन्यास मार्ग तेरे लिए हितकर है अथवा नहीं? तेरे लिए पारिजात पुष्प एक लालसा मात्र है, सतत एक काल्पनिक पूर्णता, अखंड आनन्द की खोज, मृत्यु के भय को चीरती, जन्म-जन्मान्तरों से परे मोक्ष की कल्पना।"

गुरु का आदेश लेकर मैं घर लौट आया किन्तु मन में शान्ति न थी, परीक्षा पास आ रही थी, डर था स्कूल की उपस्थिति कम होने के कारणवश परीक्षा में न बैठ सकूँगा, यह रिपोर्ट कार्ड घर में पिताजी तक यदि पहुँच गया तो तूफान मच जाएगा, माँ भी अपने स्नेह भरे आँचल में छुपाकर मुझे न रख सकेगी, पिताजी के क्रोध के आगे बहन, माँ सब मौन रहने में ही सबका कल्याण समझते हैं। वैसे भी माँ आजकल सन्तोषी माँ का मनोयोग से व्रत धारण किए हुए है, उसका अटूट विश्वास है माँ की अनुकम्पा से मुझे सुबुद्धि आ जाएगी, परीक्षा में अच्छे नम्बर मिलेंगे और अच्छी नौकरी भी। लेकिन मैं भगवान भरोसे कैसे बैठ जाता, अनेक बार स्कूल के दफ्तर और टीचर से जुगाड़ करने के बाद मेरी हाजिरी ठीक कर दी गई। मैं कटिबद्ध तैयारी न करके भी परीक्षा में बैठ गया। उन दिनों पता नहीं कहाँ से मेरा मनोबल इतना बढ़ गया कि मुझे हाई स्कूल की पूरी परीक्षा देने में कोई विशेष कठिनाई न हुई। परीक्षा देने के बाद मेरी मनःस्थिति फिर से विचलित होने लगी, एक तैराक की तरह मुझे पता था कि मैं कितने पानी में तैर कर किनारे आ गया हूँ। परीक्षाफल केवल पास, यानी 50% नम्बरों के आस-पास होगा। निश्चित था, जो आजकल की शिक्षा-प्रणाली में गतिरोध का द्योतक होता है और मध्यवर्गीय परिवार में ऐसे नम्बर

डॉक्टरी या इंजीनियर की शिक्षा पाने की लालसा पर तुषारापात कर देती है, पिताजी की खून पसीने की कमाई, माँ का सन्तोषी माँ की व्रत आस्था और बहन की अथक मेहनत आदि सबको नष्ट होते देखने से अच्छा हो कि मैं स्वयं अपने को खत्म कर दूँ। आत्महत्या का विचार मस्तिष्क में अनेक बार आता किन्तु अज्ञात से मेरे में पारिजात पुष्प का सम्मोहन जीवन की समस्त जटिलताओं का एकजुट होकर सामना करने के लिए कटिबद्ध कर देता।

एक दिन नौकरी की तलाश में भटकते हुए मुझे एक नाट्यशाला दिख गई, बाहर श्यामपटल पर 'पारिजात पुष्प' लिखा देखकर मैं रोमांचित हो उठा। साहस बटोर कर मैंने पूछताछ की कि यह नाटक कौन, कब कर रहा है? मेरा अन्तर मन पुलकित हो उठा था, शायद मैं इस नाटक में भाग लेकर अपनी सिने-स्टार बनने की इच्छा को प्राप्त कर सकूँगा। भीतर जाकर देखा कि रंगमंच पर नाटक की कहानी को एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति पास बैठे नवयुवकों और नवयुवतियों को सुना रहा है, सब मौन होकर कहानी सुन रहे हैं। मेरे अन्दर आ जाने से वह अधेड़ व्यक्ति उत्तेजित हो उठा, ''तुम्हें अन्दर आने की अनुमति किसने दी?'' मैं स्तम्भित था, लगा यह व्यक्ति मेरे पिताजी की तरह क्रोधी स्वभाव का है। किसी तरह निर्भीक होकर मैंने कहा, ''मुझे अन्दर आने में किसी ने नहीं रोका-टोका, केवल बाहर 'पारिजात पुष्प' नाटक के नाम को पढ़कर मैं बेधड़क भीतर घुस आया हूँ, आपकी पारिजात पुष्प की कहानी जानने की जिज्ञासा मात्र से खिंचा आया हूँ।''

''आपने नाटक की कला में कोई प्रशिक्षण लिया है या पहले कभी किसी नाटक में रोल किया है?''

''नहीं'' मेरा सपाट उत्तर था। सबकी हँसी की गूँज से मैं अवाक्-सा हो गया।

''फिर यहाँ घुस आने का साहस कैसे?''

''अब तो मैं यहाँ घुस ही आया हूँ, व्यवधान के लिए क्षमाप्रार्थी हूं। लेकिन मैं यहाँ कुछ भी काम दिया जाए उसे करने में अपना सौभाग्य ...''

''ठीक है, ज्यादा बोलने की जरूरत नहीं है, पर समझ लो तुम्हें पर्दे उठाने और गिराने का काम दिया जाए तो भी मना नहीं करोगे।''

''ठीक,'' मौन रहकर मैं 'पारिजात पुष्प' की कथा विस्तार से सुन लेना चाहता था जो ऐसी बातें मेरी समझ में आज की सभ्यता से बहुत दूर थीं, ऐसी कथा पर खेले गए नाटक को खाक लोग देखने आएँगे। इस नाटक में मेरा रोल ये लोग निर्धारित क्या करेंगे मैं स्वयं ऐसे नाटक में भाग नहीं लेना चाहूंगा। कहानी जान लेने की जिज्ञासा ने मुझे धैर्य से बैठे रहने के लिए बाध्य किए रखा।

''तुमने पारिजात पुष्प का नाम सुना होगा, बतलाओ यह पुष्प कहाँ मिलता

है ?'' प्रश्न मेरी ओर देखकर किया गया था।

मैंने उत्तर दिया, ''यह काल्पनिक वृक्ष स्वर्ग में ही केवल पाया जाता है, इन्द्र की पत्नी शची इसे अपने सौन्दर्य प्रसाधन में... जो पता नहीं कोरी गप्प है या नहीं।''

''जो भी हो, ठीक है, अब सुनो आगे की कथा,'' अधेड़ व्यक्ति ने गम्भीरता से पन्नों पर आँखें गड़ाते पढ़ना शुरू किया, 'लोकान्तरों का विचरण करते समय देवर्षि नारद को क्षीरसागर में बहता हुआ एक पारिजात पुष्प मिल गया, उस समय नारद मुनि भगवान श्रीकृष्ण से मिलने जा रहे थे, उन्होंने पारिजात पुष्प श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया, श्रीकृष्ण ने उस पुष्प को अपनी पत्नी रुक्मिणी को दे दिया, जो उनकी दूसरी पत्नी सत्यभामा को सहन न हुआ। सत्यभामा ने हठ ठान ली कि उन्हें पूरा पारिजात फूलों से भरा वृक्ष चाहिए, पति ने बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन सत्यभामा ने एक न मानी, प्रिया की हठ के सामने श्रीकृष्ण को घुटने टेकने पड़े, हारकर उन्होंने नारद द्वारा इन्द्र को सन्देश भेजा कि पारिजात का वृक्ष भेज दिया जाए।

मुनि नारद जी यह सन्देश लेकर इन्द्र की सभा में जा पहुँचे, इन्द्र ने उनका सन्देश सुनकर निवेदन किया, ''पारिजात वृक्ष को श्रीकृष्ण ने समुद्र मंथन के समय स्वयं मुझे दिया था, एक बार दी हुई चीज को भगवान के अवतार जो स्वयं विष्णु के रूप श्रीकृष्ण हैं, क्योंकर वापस माँग रहे हैं ?''

नारद जी कुछ देर सोच-विचार में पड़ गए और कुछ देर तटस्थ होते हुए बोले, ''अरे, उस पारिजात वृक्ष के एक फूल को क्षीर सागर में बहता हुआ देख मैंने स्वयं उठाकर श्रीकृष्ण को अर्पित किया था, प्रभु ने अपनी पत्नी रुक्मिणी को दिया, जिसे धारण करते ही उनका सौन्दर्य सौ गुना बढ़ गया, जिसको देखकर उनकी दूसरी पत्नी सत्यभामा के मन में अपने सौन्दर्य को अत्यधिक आकर्षित करने की लालसा उत्पन्न हो गई है, इसीलिए वह पारिजात का पूरा-का-पूरा वृक्ष लाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण से हठ कर बैठी हैं। पत्नी के आग्रह और ऐसे दुराग्रह के आगे श्रीकृष्ण जैसे लीलाधारी को यह सन्देश भेजना पड़ा है, अब तुम अपनी प्रिया शची से आग्रह करो कि वह पारिजात वृक्ष को प्रभु के चरणों में वापिस भेज दें।

मैं यह सुनकर तपाक से बोल उठा, ''भगवान श्रीकृष्ण जिन्होंने निष्काम कर्म का उपदेश गीता में दिया है वह भी अपनी प्रिय पत्नियों की ईर्ष्या-द्वेष भरी होड़ के चक्कर में आ गए।''

''बीच में तुम फिर बोल पड़े, अबकी बार बोले तो तुम्हें धक्के मारकर बाहर कर दिया जाएगा।'' उस अधेड़ पुरुष की ताड़ना असहनीय थी किन्तु मेरी जिज्ञासा चरम सीमा पर थी, खून का घूँट पी मैं चुप बैठा रहा।

अधेड़ ने कथा छोटी करते हुए कहा, ''इन्द्र और शची के बीच काफी देर तक तर्क-वितर्क चला, उसे मैं अभी नहीं सुनाता, आप लोग अनुमान कर सकते हैं। शची स्वर्ग स्थल में अपने महल की शोभा पारिजात वृक्ष को वापस कैसे कर देती? पास में बैठी एक नवयुवती ने अधेड़ व्यक्ति का ध्यानाकर्षण करते हुए कहा, ''यह तो स्वाभाविक है, सुन्दर चीज को संचित करना और उस पर एकाधिकार की लिप्सा होना, डायरेक्टर साहब यह तो स्वर्गलोक क्या मनुष्यलोक में भी लागू होगी, मैं तो कदापि न देती।''

''आप लोग अपनी-अपनी राय पूछे जाने पर बतलाएँ, यहाँ आप कथानक को ध्यानपूर्वक सुनें और उसे आत्मसात कर अपने रोल में डाल लेने की कोशिश करें।'' सचेत करते हुए डायरेक्टर साहब ने बतलाया कि इन्द्राणी यानी शची न मानी, उलटा अपने पति इन्द्र को फटकारा, ''आप देवों के अधिपति मुझसे दयनीय होकर भीख माँग रहे हैं। कृष्ण भगवान हैं, उनके पास अलौकिक शक्ति है, उन्होंने ही पारिजात वृक्ष दिया है, उनसे बैर न ठाना जाए, क्या ऐसे पारिजात वृक्ष को सौंप देने में ही स्वर्गवासियों का एवं मेरा कल्याण है?''

इन्द्र जिनका दूसरा नाम देवेन्द्र है, पत्नी इन्द्राणी की इस फटकार को सुन उत्तेजित हो अपने सभा भवन में लौट आए और नारद जी से पारिजात वृक्ष को न दे सकने की अपनी असमर्थता पर अटल बने रहे। नारद ने अनेक बार उन्हें समझाया-बुझाया, लेकिन इन्द्र टस-से-मस न हुए। जैसा नारद जी को अन्देशा था, इस विवाद को लेकर श्रीकृष्ण और इन्द्र में भयंकर युद्ध छिड़ गया।

''जैसा आजकल 'लेबनान' और 'इजरायल' में हो रहा है।'' चुटकी लेते हुए उस नवयुवती ने डायरेक्टर साहब को मुसकुराने के लिए बाध्य कर दिया।

''नहीं, इन दो देशों की लड़ाई के पीछे घोर शत्रुता है, यह युद्ध इन्द्र और श्रीकृष्ण के बीच कोई शत्रुतावश न था, लेकिन घमासान इतना कि पूरा भूमंडल त्राहि-त्राहि करने लगा, कितने जन, पशु, पक्षी, वनस्पति और ग्रह आदि सब उस महाकाल में अकाल भस्मीभूत हो गए, रंगमंच पर आज की अत्यधिक वैज्ञानिक टैकनीक द्वारा यह दृश्य अभूतपूर्व होगा।''

''निस्सन्देह यह तो सिनेमा के स्टारवार से भी अधिक प्रभावशाली होगा।'' डायरेक्टर का मनोबल बढ़ाने के लिए एक साथ उपस्थित जन बोल उठे।

''अभी राय नहीं ... ध्यान से सुनो, इस विनाश को देखकर सम्पूर्ण सनातन ऋषिगण श्रीकृष्ण और इन्द्र के पास युद्ध को तुरन्त समाप्त करने की प्रार्थना करने लगे। 'हे कृष्ण आप तो सृष्टिकर्ता हैं, आप रक्षक होकर भक्षक क्यों बन गए हैं, इन्द्र और आप दोनों देवता हैं, दोनों में युद्ध होने से आपको तो कोई अमंगल होता नहीं

दिख रहा है, लेकिन व्यर्थ में भूमंडल और समस्त जनजातियाँ असमय मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं।' फिर भी श्रीकृष्ण ने उनकी प्रार्थना अनसुनी कर दी, केवल अपने आग्रह यानी पारिजात वृक्ष को इन्द्र से दिलवाने की माँग की।''

समस्त ऋषिगण इन्द्र के पास पहुँचे और उन्हें लाख बार समझाने-बुझाने की, युद्धविराम करने की, श्रीकृष्ण की मांग स्वीकार कर लेने की कोशिशें की, हारकर मुनियों ने आकाशवाणी द्वारा सम्बोधित किया:

''हे कृष्ण, हे इन्द्र, तुम दोनों अपराधी हो, तुमने स्रष्टा और रक्षक होकर संहारक का भयानक रौद्र रूप धारण कर लिया है, इस विनाशलीला के लिए तुम दोनों को प्रायश्चित करना होगा, नहीं तो हम सब तुम्हें अभिशप्त कर देंगे, अच्छा होगा तुम दोनों शीघ्र एक साथ हमारी सभा में उपस्थित हो।'' इस आकाशवाणी के फलस्वरूप युद्ध शान्त हो गया और कृष्ण और इन्द्र यथासमय सनातन ऋषियों की सभा में उपस्थित हुए।

इस सभा में श्रीकृष्ण के सलाहकार देवगुरु वृहस्पति और इन्द्र की ओर शुक्राचार्य (जो श्रीकृष्ण से पुराना बैर रखते थे) बने। दोनों पक्षों को अपना दृष्टिकोण रखने का पूरा अवसर दिया गया और उसके बाद ही सनातन ऋषियों ने अपना निर्णय दिया, ''तुम दोनों ने युद्ध करके समस्त भूमंडल में प्रलय मचा रखी है, फिर भी तुम्हारी युद्ध पिपासा शान्त नहीं हो रही है। हम तुम्हें आदेश देते हैं तुम निरन्तर युद्ध करो, जो जीते पारिजात उसका होगा लेकिन यह युद्ध हमारे बतलाए धर्म और नीति के मार्ग पर होगा।''

श्रीकृष्ण और इन्द्र इस सन्धि पर राजी हुए, जिसके अनुसार, ''यह युद्ध प्रत्येक मनुष्य के शरीर में निरन्तर होता रहेगा, जो जीता पारिजात उसी का होगा। हर मनुष्य की बुद्धिस्थल पर यह युद्ध होगा, आप दोनों मनुष्य के शरीर पर अपना-अपना स्थान और आधिपत्य घोषित करो।''

ये सुनते ही शुक्राचार्य ने मौके का फायदा उठाते हुए इन्द्र को सलाह दी कि वह मनुष्य की दसों इन्द्रियों पर अपना आधिपत्य माँग ले और अपने नाम पर इन इन्द्रियों का नाम रखे और कहे कि मन भी मेरे नाम का पर्यायवाची शब्द चन्द्रमा कहलाएगा (संस्कृत में मन का शब्दार्थ इन्द्र और चन्द्रमा है), मनुष्य की प्रजनन ग्रन्थियों में गुरु शुक्राचार्य का वास जो नामान्तर में शुक्र कही जाएँगी। सात दिनों में एक दिन मेरा होगा जो इन्द्रवार है (कालान्तर में वह सोमवार हो गया है) और मेरे भक्त शुक्रवार के दिन मेरे गुरु शुक्राचार्य का गुरुपूजन करेंगे।

समस्त ऋषिगण प्रत्येक मनुष्य के शरीर में श्रीकृष्ण से निरन्तर युद्ध की शर्तें सुनकर स्तब्ध रह गए, लेकिन श्रीकृष्ण के मुख पर मन्द-मन्द मुस्कान थी, शान्त

भाव से उन्होंने घोषणा की, ''इन्द्रदेव ने जो माँगा, वह सब स्वीकार है, अब मेरा आधिपत्य सुनें। मनुष्य के शरीर में आत्मा पर मेरा पूर्ण आधिपत्य होगा, सूर्य मेरा प्रतीक ग्रह होगा। मनुष्य के तीसरे नेत्र में (दिव्य चक्षु जो दसों इन्द्रियों से परे हैं) देवगुरु वृहस्पति का स्थान होगा। मेरा भक्त दसों इन्द्रियों पर दस फनवाले कालिया नाग को नथ कर ही आत्मतत्त्व को जिस पर मेरा आधिपत्य है, समझ सकेगा। इन्द्रियों और मन पर विजय प्राप्त करने के लिए मनुष्य को देवगुरु वृहस्पति से योग साधना लेनी होगी। दीक्षा द्वारा, मरणशील इन्द्रियों से अमरज्ञान की प्राप्ति असम्भव, आत्मा सदैव इन्द्रियों और मन की पहुँच से परे रहेगी। सूर्यवार (इतवार कालान्तर में) और गुरुवार (वृहस्पतिवार) को मेरी पूजा होगी। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी के शरीर में मेरा इन्द्र से युद्ध होगा।'' श्रीकृष्ण की इस अलौकिक घोषणा सुनकर सबने उनकी प्रशंसा की और पारिजात पुष्प पाने के लिए इस युद्ध को निरन्तर होना आवश्यक माना।

इस अत्यन्त पौराणिक कथा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के शरीर में आत्मा श्रीकृष्ण और मन एवं दस इन्द्रियों के बीच युद्ध होना पूर्व निर्धारित है। कथा को समाप्त करते हुए डायरेक्टर ने उपस्थित जनों से सहमति माँगी, ''क्या इक्कीसवीं सदी का वैज्ञानिक बुद्धिजीवी इसे आत्मसात करेगा? इस नाटक का चयन और मंचन करना तब ही सम्भव हो सकता है जब आम आदमी में यह द्वन्द्व उठता हो और वह रंगमंच पर इस Psychodrama (मनो-नाटक) को देखकर इस युद्ध को स्वीकार कर पाए। एक मार्ग बहिरमुखी इन्द्रियजनित सुख एवं वैभव आदि की ओर ले जा रहा है, मन सांसारिक तड़क-भड़क में भटक रहा है, दूसरी ओर निष्काम अन्तरमुखी आत्मिक शान्ति की खोज है, इस पारिजात पुष्प के युद्ध में यह दोनों एक-दूसरे के प्रबल शत्रु हैं और पूर्व नियोजितवश विजयी योद्धा को पारिजात अवश्य मिलता है।''

ये सब विचार-विमर्श रंगमंच के कर्मियों के बीच सुन-सुनकर मेरा किशोर मन अत्यधिक संवेगित हो उठा, मुझे लगा कि इस नाटक में अभी मेरी भूमिका पर्दे उठाने और गिराने के अतिरिक्त कुछ बड़ी नहीं हो सकती। किन्तु मेरा मनोबल रंगमंच का पर्दा उठाने के कर्मचारी से उठकर भविष्य में इसका पूर्ण संचालक-कर्ता, यानी डायरेक्टर का बन गया। मन के पंख पसार कविता में मेरे स्वर गूँज उठे—

प्रश्न अनेक, निरुत्तर हुए
खोज में निरन्तर रिसते गए
गहन चेतना में समाए
जीवन काल-सा निस्तब्ध

साँसों में पिरोया काल ग्रसित शरीर
विभ्रान्त मन को उद्वेलित करता रहता
बाढ़ में आई नदिया–सा किनारे काटता
सीमाओं को लाँघता, बढ़ता गया
विमूढ़ता को झकझोरता मनोबल
विनाश को थामता, पारिजात की खोज में।

वास्तविकता के धरातल पर लौटकर इस नाटक के रंगमंच तक पहुँचने में मेरा मन शंकाओं से भर उठा। क्या इस नाटक में मंचीय सफलता और प्रदर्शनीयता के गुण हैं? मुझे तो दर्शन की बातें समझ में नहीं आतीं, लेकिन इसमें नाट्य संवादों का अभाव है जैसे पारिजात पुष्प कहीं भी दिखलाई नहीं देता।

❐

एक पहिए की गाड़ी

उसने पुरानी चिट्ठियों के ढेर को एक टीन के डिब्बे में भरकर दियासलाई लगा दी। आग की लपटें बढ़ने लगीं, पास में बैठी शशि का गोरा चेहरा तमतमाने लगा। दो-चार पानी के छींटे लगाकर उसने लपटों को ऊँचा उठने से धीमा कर दिया। आग की लौ में जलकर कागज की लिखावट चाँदी-सी चमक उठी। अतीत के ये सारे सन्दर्भ क्या जलकर खाक हुए उसके किसी लिए काम के न रहेंगे? उसकी विचारशक्ति इसी तरह खाक हुए कागज़ की तरह किसी काम की क्यों नहीं हो जाती, क्यों शशि के प्रति लोगों की जिज्ञासा अनेक प्रश्नों के घेरे में बाँधती रहती है, कोई उसे विवाहित और अविवाहित के बीच की देहली पर रखकर नापने की कोशिश में पूछ बैठता, "आपकी उम्र तो चालीस के आस-पास की लगती है। अभी तक आपने विवाह क्यों नहीं किया है। अभी भी किसी विधुर से ...।"

प्रश्न औपचारिकता की सीमा को पार करके शशि को अपनी निजी जिन्दगी की सीमा में घुसकर उसके स्वाभिमान पर प्रहार करता-सा लगता, एक फीकी मुस्कान चेहरे पर लाकर वह उस प्रश्नकर्ता को निरुत्तर कर देती, "मैंने अपने प्रोफेशन से शादी कर ली है, क्या आपको कोई एतराज है।" शशि ने वार्त्तालाप को विराम देने के लिए कहा। मीना ने उत्तर दिया, "नहीं, नहीं, मैंने तो ऐसे ही पूछ लिया, आजकल तो न शादी करने का रिवाज़-सा हो रहा है, कितनी कामकाजी लड़कियाँ शादी-विवाह के झंझटों में नहीं पड़तीं, लेकिन उनका कोई Boy friend (पुरुष मित्र) होता है, मौज-मस्ती में जिन्दगी व्यतीत करने के लिए लड़के-लड़कियाँ Living arrngement करते हैं (साथ-साथ रहने लगते) हैं, जब बच्चे हो जाते हैं तो Single parenthood (एकल जनकीय व्यवस्था) द्वारा पालन-पोषण हो जाता है, फिर आजकल तो सरकार भी ऐसी व्यवस्था में पले बच्चों को न्यायिक अधिकार देती है और उनकी माँ को प्रेमी को सम्पत्ति में अधिकार देकर सुरक्षा प्रदान कर रही है।" प्रतिउत्तर में शशि ने मौन रहकर मीना को शान्त कर दिया।

ऐसे संवादों को सुना-अनसुना करने की शशि को आदत-सी बन गई। काश हमारे भारतीय समाज में ऐसे प्रश्न केवल जनगणना के समय पर ही पूछे जाते, जैसे—आपकी उम्र, पेशा, आमदनी, विवाहित-अविवाहित आदि।

अब तक कागज़ टीन के भीतर जलकर राख हो गए थे और टीन का डिब्बा आँच से पिघलकर बदसूरत लगने लगा था। वातावरण में धुएँ, जले कागज़ की गन्ध का प्रदूषण घुटन पैदा करने लगा था। शशि ने भागकर फ्लैट के सारे दरवाजे और खिड़की आदि धड़ाधड़ खोल दिए, रंगीन जाड़े की महक ने फ्लैट को समेट लिया और खिड़कियों पर पड़े पर्दे हवा में इठलाने लगे, शशि को हल्की-सी भूख लगने लगी। सैंडविच बनाकर भूख को जल्दी ही बुझाया जा सकता था, लेकिन आज उसे शुद्ध वैष्णवी भारतीय भोजन सब्जी, दाल, भात, रोटी को तैयारी करना था, जिसके उपकरणों को जुटाने में उसकी माँ को दिन भर रसोई में जुटे रहना पड़ता था। कभी भी नौ-दस लोगों से कम का खाना उसकी माँ की रसोई में नहीं बनता था, आजकल तो उसके पास अति आधुनिक उपकरण है, फिर अकेले का खाना बनाने में कितनी देर लगती है, केवल मन में पर्याप्त उत्साह होना चाहिए। चूल्हे, चक्की से हटकर उसकी माँ का कोई संसार न था, सन्तानधन, पशुधन, खेती से आई फसल को बटोर कर सुरक्षित रखने की माँ में अपारशक्ति थी जो शशि को माँ से विरासत में मिली थी। माँ और उसके जीवन में उतना ही अन्तर है जितना चू-चू करती बैलगाड़ी और उसकी मारुति कार में है। यह सोचकर उसका मन अभिमान से भर उठा, तब की अन्दर बैठी एक पुरानी याद ने उसे धिक्कार दिया।

माँ ने बतलाया था कि बच्चों को लेकर वह अपने सास-ससुर से मिलने हर गर्मी की छुट्टियों में गाँव जाती थी, तब आदर-सत्कार करने पूरा गाँव आँगन में जुट जाता था। सबके मन से उठे परम्परा, प्रशंसा के शब्दों की बौछार से माँ द्रवित होकर उनके पैर छूती तथा उनके आशीर्वादों से अघाती न थी, "बहू, इसी तरह अपने पुरखों की देहली पर माथा टेकने आती रहना। बड़े बाप की बेटी, शहर के बड़े अफसर की पत्नी हो गई तो क्या? कोई अपने सास, ससुर से उऋण हो सका है? ये लोग तो देवता हैं, उनके पैर धो-धोकर पीना चाहिए।"

आज वह गाँव पहुँच जाए तो क्या वह उनके द्वारा निन्दित न होगी? "हाय दईय्या! कैसी पतुरिया जैसी सजी-धजी है। अरे चौधरी परिवार ने बेटी की इतनी उम्र तक शादी न करके अपनी छाती पर धर रखा है, कैसा कलियुग आ गया है?"

शशि भारतीय समाज की रूढ़िवादिता को एक टीन के डिब्बे में भरकर काश जला पाती। एकाएक रेडियोग्राम पर बजते संगीत की आवाज़ बन्द हो जाने से शशि का ध्यान उस ओर गया। इतवार की छुट्टी को शशि संगीतमय बनाने की भरसक कोशिश करती, इसके लिए उसके पास बहुत बड़ा पाश्चात्य और भारतीय Classical (शास्त्रीय) और सिनेमाजगत के रिकार्डों का भंडार था, जिन्हें वह पूरे दिन चढ़ा कर सुनती रहती थी। छुट्टी के दिन चुन-चुनकर उन्हें सुनने में वैसा ही आनन्द आता था

जैसे नित नए व्यंजन बनाने में माँ का पूरा दिन रसोई में कहाँ व्यतीत जो जाता था पता ही नहीं लग पाता। पिताजी के मित्रगण, रिश्तेदार आदि का सदा आना-जाना लगा रहता था, फिर कई भाई-बहन होने के कारण सबकी पसन्द अलग-अलग होती थी, माँ को हर एक की फरमाइश पूरी करने में संगीत जैसा आनन्द आता था। बचपन में शशि भी माँ की गृहस्थी में हाथ बँटाने में अपना पूरा सहयोग देती थी, छोटे भाई-बहन के कपड़े सीना, घर को साफ-सुथरा सजाकर रखना, सबसे छोटी बहन को नित नई रंगीन रिबन लगाकर चोटी करने में उसे अपनी स्कूली पढ़ाई से ज़्यादा समय देना पड़ता था। माँ का कहना था, ''काम सबको प्यारा होता है, चाम नहीं।'' घर-गृहस्थी चलाना भी सीखो, किताबें तो लगता है तुम्हारी कब्र तक जाएँगी।'' माँ के मन में शिक्षा के प्रति आदरभाव था, शायद वह अपनी शिक्षा की कमी को बेटियों को देकर सन्तुष्ट होना चाहती थी, कहती भी थी कि ''मैं तो अपनी बेटियों को सोने के गहने से न लादूँगी, उन्हें उच्च शिक्षा देकर स्वावलम्बी बनाऊँगी।'' वह ज़माना भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के उमंगों से भरा था, नारी शिक्षा, लड़के-लड़की में भेद-भाव न करना मध्यवर्गीय परिवारों में आम चलन की रीति थी।

शशि का ध्यान संगीत की ओर आकर्षित हो गया, ठुमरी गाई जा रही थी, 'उल्टी लट सुलझा जा रे बालम' जो आज भी बासी नहीं लगती जबकि ज़्यादातर पढ़ी-लिखी कामकाजी औरतों ने अपनी लम्बी चोटी की जगह अपने बाल कटवा दिए हैं। छोटे बालों को सँवारना, धोना आदि सरल रहता है किन्तु नारी का हृदय आज भी इस ठुमरी को सुनकर Sentimental (भावुक) हो जाता है, प्रिय के पदचाप सुनकर अनुहार, रुठना आदि करने का आधुनिक नारी का भी जन्मसिद्ध अधिकार है। अपने व्यक्तित्व के रोमैंटिक (भावुक) अंग को वह Disclaim (दावा छोड़ना) कैसे कर दे? शशि ने बड़ी कटिबद्धता से अपने को इस ओर न बहकने की कोशिश की है। प्रणय, विवाह, सेक्स आदि मान्यताएँ इसी इक्कीसवीं सदी में बदल गई हैं। शशि तो आर्थिक रूप में पूर्ण स्वतन्त्र है, आज वह अपने ऊपर इतना खर्च कर देती है जितने पैसों में एक सम्भ्रान्त परिवार का पूरा महीना खुले हाथ से चलाया जाता है। उसे पुरुष के पीछे चलने की क्या जरूरत है? गाँव में सुना था कि औरत को बचपन से पुरुष के पीछे चलने के लिए बाध्य किया जाता है, पहले पिता, फिर पति, फिर पुत्र-पौत्र। ये तो नान्सेन्स (बेतुकी) बातें हैं। क्या औरत गाय-बकरी है जिसे हाँकनेवाला चाहिए। केवल उसे अपने छाती के दूध को फीडिंग बाटल (दूध पिलाने वाली बोतल) बनाकर रखना है? शायद इसीलिए वूमनलिब (नारी स्वतन्त्रता आन्दोलन) में अपने मांसल स्तन को कटवा कर पुरुष के समकक्ष होने की ठान ली है। आज इस आधुनिक शिक्षित जगत में कैसा हाहाकार है, नारी

अपने मांसल गुप्त अंगों को सुन्दर वस्त्रों में छिपाकर सुरक्षित रखने के बजाय उन्हें खुलेआम प्रदर्शित करके क्या लेना चाह रही है ? ऐसा वूमनलिब तो औरतों को एक इलेक्ट्रॉनिक बहुमंजिली लिफ्ट में बिठाकर समाज से दूर अकेला ऊँचा उठाकर आकाश को छू लेने की होड़ में है। माना उसे समाज में कान्टरस्पटिव (गर्भ निरोध) प्राप्त करके पुरुष की तरह उन्मुक्त होने की आवश्यकता है, किन्तु स्वतन्त्रता के साथ-साथ कर्तव्य निभाने की भी। शशि की स्मृतिपटल पर नानी की सुनाई चिड़िया-चिरौटे की कहानी कौंध गई। एक दिन दोनों ने मिलकर खिचड़ी पकाई, जब खिचड़ी पक गई तब चिड़िया की नियत बदल गई। चालाक चिड़िया बोली, "चलो पहले कुएँ पर चलकर नहा आएँ।" वहाँ पहुँचकर दोनों ने मिलकर झूला डाला और झूला झूलते समय चिड़िया ने चिरौटे को कुएँ में ढकेल दिया। घर जाकर चिड़िया ने अकेले ही सारी खिचड़ी खा ली और आँख में पट्टी बाँधकर सो गई। इधर चिरौटे ने बिल्ली मौसी से विनती करके अपने को कुएँ से किसी प्रकार बाहर निकलवाया। बिल्ली मौसी की नियत भी डोल गई, वह भीगे चिरौटे को खाने के लिए जब झपटी तो चिरौटे ने विनती की, "मुझे सूख तो जाने दो। जब सूख जाऊँ तब मुझे खा लेना।" बिल्ली आस-पास बैठी ताक लगाए रही, 'कब चिरौटा सूखे, मैं उसे खाऊँ।' लेकिन जैसे ही चिरौटे के पंख सूखे वह तुरन्त उड़ गया और घर जाकर देखता है कि चिड़िया आँख में पट्टी बाँधे पड़ी है। नानी तो इस कहानी को और लम्बी करके सुनाती थी किन्तु सारांश यही था कि चिरौटे ने चिड़िया को माफ कर दिया, फिर से दोनों ने मिलकर खिचड़ी पकाई और प्रेम से मिलकर खाई और झूला झूला। सदियों से प्रताड़ित नारी स्वतन्त्रता की होड़ में क्या पुरुष चिरौटे को ही नहीं, अपने घर-संसार को कुएँ में ढकेल नहीं दे रही है ?

शशि कैसे भूल रही है उसका मान-सम्मान धूल-धूसरित भारतीय समाज नहीं कर रहा है। कहीं उसके अन्त:मन में बैठी कुंठा है जो सर्प-सी दर्प में खंडित मातृत्व की इच्छा पर हावी हो गर्वित है, आज के पुरुष के सहयोग के बिना वह अतृप्त है। उस मानिन प्रिया के आगे पुरुष को झुकना पड़ेगा, नारी क्षमा कर सकती है लेकिन अपने सदियों के अपमान को भूल नहीं सकती। प्रकृति ने नारी को सतत जूझने की अपार शक्ति दी है।

❑

सन्ताप

एक मुस्कराता चेहरा आकर उसे क्षोभ से भर देता है। वह मुस्कराता चेहरा उसकी सहकर्मचारी एक महिला का है। गौरीशंकर के मस्तिष्क में उस महिला से जुड़ा कोई भावनात्मक सम्बन्ध उभरकर नहीं आता, किन्तु यादों के सिलसिले उसकी चेतना पर एक के बाद दूसरे आ पड़ रहे हैं मानो मोती की लड़ी टूटकर चिकने फर्श पर बिखर गई हो। समझ में नहीं आता किसको कैसे पकड़ें?

यादों का सिलसिला पकड़ने के लिए उसके मस्तिष्क में एक लम्बे दशक का दायरा बन गया, गत दस वर्षों तक उसने उस महिला के साथ-साथ काम किया था, दस वर्षों की लम्बी अवधि की याद ने उसकी चेतना को डस लिया, एकाएक उसके मस्तिष्क में भयंकर दर्द होने लगा, विषाद की लहर उसके मन-प्राण पर छा गई। जीवन क्षणभंगुर है यह बात भारतीय दर्शन का छात्र होने के नाते वह भलीभाँति जानता है, पर वह स्वयं की क्षणभंगुरता से त्रस्त हो कैसे जी सकेगा ... ? आज उस महिला की अकस्मात मृत्यु को वह "जीवन क्षणभंगुर है" कहकर आश्वस्त नहीं हो सकता। वास्तविकता तो यह है कि उस महिला की अकस्मात् मृत्यु के समाचार ने उसकी बुद्धि पर ऐसा क्रूर प्रहार किया है वह जड़ बन गई है। इस समय वह दर्शनशास्त्र क्या, अपना सब कुछ भूल गया है। मृत्यु के भय से दबोचा वह एक अबोध बालक-सा निरीह अपने जीवन को अंक में छिपाए बैठा है, इस विवशता में शून्यता का सहारा लिए। तब ही अचानक उसके चपरासी ने आकर दस्तक दी—

"साहब...बारह बजकर पैंतालीस मिनिट पर एक शोकसभा का आयोजन जवाहरलाल स्टेडियम में किया गया है।"

"ठीक है, मैं पहुँच जाऊँगा। तुम अन्य सभी कर्मचारियों को जाकर बतला देना और सुनो...बड़े साहब को मेरा सलाम कहना, शायद वह समझ जाएँगे कि शोकसभा में..."

"बड़े साहब तो अपने दफ्तर में नहीं हैं, वह तो किसी काम से डायरेक्टर साहब के पास फाइल लेकर गए हुए हैं।"

गौरीशंकर इस समाचार को सुनकर अवाक् था, बड़े साहब इस शोक के समय

अपना ध्यान फाइलों में कैसे लगा सके? ऊपर से जब शोकसभा में उन्हें जाकर अध्यक्ष पद का भार संभालना है तब वह डायरेक्टर के कमरे में बैठे मंत्रणा कर रहे हैं। उसे याद आया बड़े साहब को वह दिवंगत महिला काफ़ी तनाव में रखती थी, दोनों की पटरी कभी बैठती न थी, वह महिला बड़े खुले शब्दों में बड़े साहब का बनाया हुआ छोटा-बड़ा निर्णय अपने तर्कों से धराशायी कर देती थी, जबकि गौरीशंकर की जबान-बड़े साहब के सामने कुछ बोल नहीं पाती, संकोचवश या अपने से बड़ों का आदर करना उसकी आदत बन गई थी। मन-ही-मन वह एक तरह से Complex (मनोग्रन्थि) के कारण इस महिला की निर्भीकता का आदर करता और अपने अन्य सहकारी जनों के बीच हँसी-मज़ाक और छींटाकशी का शिकार बन जाता। अपने अन्दर पनपते मनोविकार को गौरीशंकर दर्शनशास्त्र का ज्ञाता होकर भी समझ न पाता, केवल घुटन महसूस करके रह जाता, लेकिन आज उसे उस महिला से इतना अधिक मोह क्यों उत्पन्न हो रहा है? क्यों वह इस मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाता? अखबार में तो वह रोज़ ऐसे दुखद हादसे पढ़ता है। शायद दफ्तर में इस निर्भीकता से बड़े साहब का मुकाबला अन्य कोई कर्मचारी न कर सकेगा। इस कमी की पूर्ति असम्भव है जैसे उसकी अपनी अमूल्य क्षति हो गई हो।

बड़े साहब दफ्तर को एक सम्मिलित परिवार की संज्ञा देकर मिल-जुलकर कार्य करने की पहल करते आए हैं, जिसका प्रतिवाद वह चाहकर भी नहीं कर पाता। दफ्तर परिवार नहीं होता, परिवार में तो हमारी आवश्यकताएँ बिन माँगे समझी और पूरी की जाती हैं, जबकि दफ्तर में हर अधिकार को बड़े-छोटे अफसर की श्रेणी में बाँटकर किया जाता है। कौन क्लास-I,और क्लास-II, III, IV आदि श्रेणियों में। यहाँ तक कि घर में कितने कमरे हों, उसकी माँगें किस श्रेणी का अमुक कर्मचारी है, उसी पर निर्भर होती है। दफ्तर में माँगें पूरी करवाने के लिए संघर्ष कर्मचारी संघ द्वारा सतत चलता है, उनके एड़ी-चोटी के प्रयत्न से न्याय मिल पाता है, तब दफ्तर सम्मिलित परिवार की तरह कैसा? दिवंगत महिला किसी कर्मचारी संघ की सक्रिय सदस्या न होते हुए भी अपने स्वतंत्र विचारों को सपाट रूप से रखने एवं अध्यक्ष, सरकारी पक्ष से लोहा लेने में अपना दूसरा सानी नहीं रखती थी। गौरीशंकर अपनी दबी हुई हिंसक भावनाओं को विजयी होता देख एक विशिष्ट आकर्षण मात्र से मन-ही-मन तृप्ति अनुभव करता आया था। इस अकस्मात् मृत्यु के कारण अध्यक्ष बड़े साहब को पूरी छूट मिल जाएगी, शायद वह इस महिला की मृत्यु से मन-ही-मन खुश हैं, इसीलिए डायरेक्टर के कमरे में बैठकर मंत्रणा कर रहे हैं। हो सकता है वह वहाँ जाकर डायरेक्टर साहब को अवगत करा रहे हों कि इस महिला की मृत्यु क्या एक दुखद हादसा मात्र समझा जाए या आत्महत्या जैसा जघन्य

अपराध। वह बरसात के मौसम में अकेली क्यों समुद्र में तैरने चल पड़ी, माना समुद्रतट होटल के नज़दीक था लेकिन वहाँ तैरने की सख्त मनाही थी, जैसे वह किसी कानून को सरलता से स्वीकार नहीं कर पाती थी, वैसे ही उसने अपनी मनमानी करके मृत्यु को अंगीकार कर लिया।

इस दुखद समाचार का आतंक पूरे दफ्तर पर छाया हुआ था, जितने मुँह उतनी बातें। एक काली छाया-सी पूरे दफ्तर में छा गई थी। ऐसे में बड़े अफ़सरों को मन्त्रणा करने के बहाने गुप्त रूप से निर्णय लेने का मौका मिल गया है, सोचकर गौरीशंकर शोकसभा की ओर अकेले ही चल पड़ा। अन्य कर्मचारियों की तरह कानाफूसी करने का यह अवसर न था, स्वतंत्र विचारधारा को निर्भीकता से प्रकट करना कितना प्राणघातक हो सकता है यह विचार उसकी चेतना को एक घायल पक्षी की तरह निरीह किए दे रहा था। रास्ते में ज्यादातर कर्मचारी मौन हो शोकसभा की ओर चल रहे थे। शोकसभा का आयोजन बारह बजकर पैंतालीस मिनीट पर दफ्तर के सबसे बड़े हॉल में किया गया था, निश्चित समय पर सब लोग जब मौन बैठ गए तब ही बड़े साहब ने डायरेक्टर के साथ मंच पर आकर आसन ग्रहण किया। आज खड़े होकर किसी ने उनका अभिवादन नहीं किया। सब खामोशी से बैठे मृतक के परिवारजनों का इन्तजार कर रहे थे। इन्तजार की घड़ियाँ हमेशा ही लम्बी और बोझिल बन जाती हैं, किन्तु दुखद समय में इन्तजार में खामोशी शोक का उचित वातावरण बनाने में सहारा देती-सी महसूस हुई।

शोक सभा का समय केवल 15 मिनट का निर्धारित था ठीक 1 बजे ही सब लोगों को भोजन-विश्राम के लिए जाना था, अत: शोक सभा की सारी कार्यवाही विधि- विधान से शुरू और सम्पन्न हुईं मानो दफ्तर में इस मृतक कर्मचारी के इतिहास का अन्तिम अध्याय लिखा जा रहा हो। ऐसी कार्य निपुणता उच्च कोटि के सरकारी अफ़सरों में देखने को पाई जाती है। शोक संतप्त परिवार के लिए हार्दिक संवेदनाएं लिखते समय, कर्मचारी की समस्त कार्यकुशलता, चरित्र व्याख्या, अनुशासनशीलता आदि के वर्णन में राजनीतिक नेता की सी परख, कवि की सी तरलता एवं वाक्यपटुता में साहित्य शुद्ध हिन्दी का केवल समावेश किया गया था। लगता है यह संवाद दफ्तर के हिन्दी विभाग द्वारा तैयार करवाया जाता है, बड़े साहब तो हिन्दी बोलते समय केवल कर्ता और क्रिया को छोड़कर अंगरेजी भाषा के ही शब्द प्रयोग में लाते हैं। गौरीशंकर शोक सभा समाप्त होते ही बाहर अकेला निकल पड़ा, अनायास ही उसके पैर मृतक कर्मचारी के घर की ओर मुड़ पड़े।

रास्ते भर विचारों का मंथन होता रहा, भावावेश में आकर वरिष्ठ अधिकारी काम करने लगे तो कार्यालय का काम कैसे चलेगा ? कितने कर्मचारी आते-जाते हैं,

कोई सेवानिवृत्त होकर, कोई स्थानान्तरित होकर, कोई अकस्मात मृत्यु वश और कोई पद से ... कोई भी कर्मचारी यहाँ अपरिहार्य नहीं होता, मृत्यु अकस्मात आकर कब किसको ले जाए, लेकिन संसार का कारोबार चलता रहता है, पता है कि यह मृतक कर्मचारी दो बच्चों की माँ थी, क्या यह क्रूर आघात उन दोनों बच्चों के कोमल अंग पर पड़कर उन्हें पक्षाघात-सा जीवन भर पंगु न कर देगा? इस भावी आशंकाओं से घिरा हुआ गौरीशंकर निराश थके कदमों से मृतक के घर तक पहुँच गया। वहाँ एक तख़्ती पर परिचित नाम को पढ़ वह रोमांचित हो उठा—'श्रीमान्, श्रीमती प्रभु निवास' उसे लगा प्रभु के नाम की तख़्ती लटकाकर इस मृतक महिला ने भगवान से भी चुनौती ले ली थी। शायद इसी का दुष्परिणाम है कि इसकी अकाल मृत्यु हो गई। ऐसे घर में घुस कर वह बच्चों को क्या धीरज देगा? माना 'प्रभु' नाम इस परिवार के सभी सदस्यों की जाति का द्योतक है, इसलिए विचारधारा को एक ओर झटककर वह बिना घंटी बजाए घर में घुस गया। दरवाजा खुला था, शायद भोजन अवकाश का समय हो जाने के कारण नौकर के लिए उसे खुला छोड़ दिया गया होगा। एक दसवर्षीय बालक ने बड़े सहज भाव से पूछा, "आप किससे मिलने आए हैं, हमारे पापा मद्रास यानी चेन्नई गए हुए हैं, हमारी माँ का वहाँ ...।"

"मुझे पता है, तुम्हारे पापा चेन्नई गए हुए हैं। मैं तो तुम बच्चों से मिलने आया हूँ।"

"अन्दर आइए, आज हम लोग स्कूल नहीं गए हैं, शायद स्कूल बस भी नहीं आई है, मुझे पता चला है कि स्कूल में ड्राइवरों ने हड़ताल कर रखी है।" कहता हुआ वह बालक गौरीशंकर के हाथ पकड़कर ड्राईंगरूम में ले आया।

ड्राईंगरूम का वातावरण गौरीशंकर की आशा के विपरीत काफ़ी सुव्यवस्थित था, मानो शोक संतप्त परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने को सुव्यवस्थता में बाँधकर शान्त रखने की कोशिश में लगा हुआ था। उसने सामने सोफे पर एक बूढ़ा व्यक्ति को बैठा अखबार पढ़ते हुए देखा जिसका परिचय 'नाना जी' कहकर बालक ने दिया। बाहर बरामदे में पड़ी डाईनिंग टेबिल पर खाने के लिए तैयारी करती हुई एक किशोर कन्या दिखी, उसने भी तपाक से अभिवादन करते हुए पूछा, "आप मम्मी के दफ्तर से आए हैं? लेकिन हमारे पापा बाहर गए हुए हैं।"

"मुझे पता है। आप क्या कर रही हैं?"

"मैं तो खाने की तैयारी करवा रही हूँ, इस समय बरसात के कारण मक्खी आ जाती हैं, उन्हें भगा रही थी, कुछ एक को मार भी डाला है, आप क्या भोजन ...।"

"नहीं, मैं तो आप बच्चों से मिलने आया हूँ। मेरा घर कैम्पस के बाहर है। अत: मैं अपने साथ खाना लाता हूँ जो दफ्तर जाकर खाऊँगा। मैं तुम्हारे नाना जी से

बातचीत करके चला जाऊँगा, यदि तुम लोगों को किसी चीज़ की आवश्यकता हो तो बतलाओ।'' कहकर गौरीशंकर ड्राईंगरूम में बैठ गया। वह बूढ़ा अभी भी अखबार में टकटकी लगाए हुए था, वार्त्तालाप को बढ़ाते हुए गौरीशंकर ने पूछा।

''मिस्टर प्रभु मद्रास से कब लौटेंगे?''

''वह तो कल शाम तक आ जाएगे, वहीं पर संस्कार आदि करवाकर।'' कहकर वृद्ध अपना चश्मा साफ करने लगा। कुछ देर तक खामोशी छाई रही जिसमें गौरीशंकर को साँस लेना भी कष्टदायक लगने लगा। दोनों वयस्क अब क्या पूछे, क्या कहे कुछ समझ नहीं पा रहे थे। दोनों घुटन भरी निराशा को थूक देने का प्रयत्न नहीं करना चाहते थे, शायद वृद्ध के मन में अनन्त गहराइयों तक विषाद की काली घटाएँ पैठ गई थीं जो ऊपरी सतह पर अन्दर और बाहर के रूप को अलग कर देने में असमर्थ थी। एकाएक किशोर बालिका ने आकर खामोशी तोड़ी।

''आप पानी पीना चाहेंगे?''

''नहीं, अभी तो प्यास नहीं है, मेरे लायक कोई काम हो तो अवश्य याद कीजिएगा।'' कहते हुए गौरीशंकर उठने लगा।

इस बार वृद्ध आत्मीय स्वर में बोला, ''नहीं, इस समय तो कोई काम या आवश्यकता नहीं सूझ रही, फिर हमारे परिवार के कई सदस्य आने वाले हैं—मेरी दूसरी बेटी, उसका पति।''

बिदा के लिए दोनों बच्चे गौरीशंकर के साथ बाहर आए, किशोर बालिका ने धीमे स्वर में कहा, ''धन्यवाद!''

हाथ जोड़कर गौरीशंकर ठिठककर अवाक् खड़ा हो गया, लगा उसके धीरज का बाँध टूट रहा है, अपने आँसुओं को बिखराकर वह शायद बच्चों को रुला नहीं देना चाहता था, अपने को संयत करके बोला, ''धन्यवाद देने की जरूरत नहीं है, मैं तुम्हारे पापा से मिलने फिर आऊँगा।''

वह चपल गति से अपने को बढ़ाता हुआ हाँफने लगा, लेकिन मन-ही-मन उसे इस परिवार के वृद्ध एवं बच्चों से मिलकर हिम्मत मिलने लगी, निर्भीकता तो बचपन के संस्कारों में घुट्टी की तरह पिलाई जाती है, वास्तव में यह घर प्रभु का निवास स्थान है।

❒

मोह

''यह क्या खेल खेल रहे हो?''

''कुछ भी नहीं, मैं तो 9/11 का खेल बनाना चाह रहा था, लेकिन आपने आकर सब गड़बड़ करके रख दिया है।''

''बच्चे, तुम 9/11 के हिंसात्मक हादसे को खेलना क्यों चाहते हो!'' माँ ने विनीत को अपनी ओर देखने के लिए उसके कन्धे पर प्यार से थपथपाकर कहा।

''आप मुझे अपने हाल पर छोड़ दें, मैं कोई बच्चा नहीं हूँ, मैं आपकी तरह God fearing (भगवान से डरने वाला) नहीं हूँ। मैंने कितनी बार आपसे कहा है कि मेरे कमरे में घुसकर ताक-झाँक करना छोड़ दे। क्या मैं कभी आप और पापा के निजी कमरे में घुसकर देखता हूँ कि आप दोनों क्या ... ।''

''चुप, अब आगे बोलने की जरूरत नहीं है, बड़े क्या हुए हो सब पर अपना रौब जमाते हो ..., शर्म आनी चाहिए, स्कूल में क्या Angry young man (क्रोध से भरा जवान) की शिक्षा दी जाती है?''

''फिर से लेक्चर शुरू हो गया, मुझे स्कूल में पढ़ने के लिए आप लोगों ने ही भेजा था, मैं तो स्कूल जाने के सख्त खिलाफ हूँ।''

''आगे बढ़कर कैसे पैसे कमाओगे, पढ़ोगे नहीं तो नौकरी ... ।''

''वही तो आप लोगों की सोच के कारण ... So called middleclass mindset (मध्यवर्गीय मनोवृत्ति) का नतीजा है, पेट भरने के लिए जानवरों को किसी स्कूली शिक्षा की जरूरत नहीं होती।''

''बस तुमसे तो बात करना मुश्किल है।'' दरवाजा खटाक से बन्द करते हुए गीता ने अपने गुस्से को मन-ही-मन दबाते हुए कहा। विनीत को माँ का मुँह बन्द करने के लिए शब्दों का हिंसात्मक प्रहार करना अपने किशोर मन के ऊपर रक्षा कवच पहना हुआ-सा लगा। उसके माँ-बाप दोनों उच्च स्तर के सरकारी कर्मचारी हैं, घर में शान्त वातावरण है, बातचीत में सौम्यता एवं पारिवारिक बड़े-छोटे की गरिमा का सदैव ध्यान रखा जाता रहा है, लेकिन उनके बेटे विनीत में आजकल गुस्से का पारा अचानक बढ़ जाने के कारण माँ-बाप और बेटे में तनाव का त्रिकोणीकरण बना रहता

है। गीता स्वभाव से कर्तव्यनिष्ठ एवं माँ होने के कारण पति और पुत्र के बीच की कटुता को वहन करने में असमर्थ होने पर भी शान्त चेहरा लगाए रहती है, अन्दर-ही-अन्दर उसे चिन्ताएँ सताती रहती हैं। बाप और बेटे में टकराव बचपन में नहीं था, फिर क्यों किशोर अवस्था की पहली सीढ़ी चढ़ते ही विनीत में पिता के प्रति उपेक्षा एवं बात-बात में उन्हें चुनौती देने की धृष्टता दिखने लगी? माना इनका परिवार 9/11 में न्यूयार्क के हादसे को सहन नहीं कर सका, लेकिन उस त्रासदी को सबसे अधिक गीता ने भोगा था। भाग्यवश वह अपने दफ्तर के अन्दर नहीं थी, लिफ्ट लेते समय वहाँ भगदड़, आगजनी और घबड़ाए हुए चेहरों को देखकर वहाँ से तीर की तरह निकलकर खुले आसमान के नीचे आ गई थी। उस दृश्य को कैसे भूला जा सकता है? उसे अपनी सुध-बुध न रही थी, सड़क पर बेतहाशा भागते हुए उसकी एक सैंडिल पैर से निकल गई और वह कितनी मीलों दूर तक नंगे पैर ही चलती रही थी, उसने पति को मोबाइल पर Contact (सम्पर्क) भी नहीं किया था, ऐसे समय में केवल भागते रहना, मानो एक भयभीत हिरन जिसका पीछा कोई हिंसक शेर कर रहा हो, केवल संभव था। सुरक्षित स्थान पर पहुँचकर ही उसने पति और पुत्र को Contact किया था, दोनों को अपनी सुरक्षा का सुखद समाचार देने के बाद ईश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद दिए। उस हादसे के समय उसके पति की Posting (नियुक्ति)न्यूयार्क में नहीं थी, उस समय वह Washington D.C (अमेरिका की राजधानी) में कार्यरत थे, लेकिन टी.वी. पर Manhatton (मेनहेटेन में व्यापारिक केन्द्र) में क्या हो रहा है, उस हृदय-विदीर्ण करने का वह सारा दृश्य देख रहे थे, हादसे के समय पत्नी को Contact करने की उनकी सारी कोशिशें बेकार गई थीं। उस दुश्चिन्ता में वह अपने पुत्र विनीत की सुधबुध न ले सके थे। पत्नी ने अत्यन्त साहसपूर्ण तरीके से अपने को सुरक्षित करने के बाद पुत्र विनीत को घर ले आई थी। पति भी फौरन न्यूयार्क पहुँचकर पत्नी और पुत्र विनीत को अपने पास ले आए थे। परिवार तुरन्त एकजुट हो जाने से समय की रफ्तार के साथ उनकी आपबीती त्रासदी केवल एक हादसा की स्मृति बनकर रह गई थी। केवल विनीत के कोमल चित्त पर उसकी सिहरन कभी धूमिल नहीं हुई। उसने वह दृश्य नहीं देखा, केवल बड़ों से सुना और बाद में अनेक बार टी.वी. पर देखकर उस ज्वलन्त प्रकोप को स्मृति पटल पर अंकित किया। खेल में वह उसे दर्शाता और मन-ही-मन उस पर विजय प्राप्त करने की सतत कोशिश करता रहता, उसे लगता उसके पिता की इस हादसे में कोई भूमिका नहीं है, वह तो माँ को बचाने भी नहीं आया था। बाल्य मन पर ऐसे पिता पर आक्रोश आ जाना स्वभाविक था, जबकि पिता अपने कुटुम्ब को सुरक्षित करने के लिए अपनी विदेश की उच्च Posting (नियुक्ति) को रद्द करवाकर तुरन्त भारत लौट गए थे।

विनीत के लिए 9/11 के बाद से स्कूल छूटा, दोस्त छूटे, देश तथा उसका प्रिय मित्र टामी (पालतू कुत्ता) और न जाने क्या-क्या, जिसका ब्यौरा देना कठिन है, उसके बाल्यमन में पिता के कारण ही यह सब हुआ, माँ की तरह पिता को हिम्मत से काम लेना चाहिए था, वहीं रहकर उग्रवादियों को सबक सिखाना चाहिए था। वह एक दिन अवश्य वहाँ जाकर बदला लेगा। उग्रवादियों से कैसे बदला लिया जाए, इस कार्य को पूरा करना वह अपने जीवन का परम् उद्देश्य समझने लगा था। चित्त में अनेक विचारों का ताना-बाना बनाता रहता, उसे ऐसे में पढ़ाई, वह भी भारत के स्कूलों में, व्यर्थ लगती। माँ की स्नेह भरी छत्रछाया से वह दूर भाग जाना चाहता था, उसे लगता माँ के साथ वह कभी कठोर नहीं बन सकता, पिता तो सदैव से कायर और पलायनवादी हैं, यह दोनों उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक लगते।

भारत आने के बाद 9/11 के अलावा उसे उग्रवाद की त्रासदी के अनेक समाचार टी.वी. पर दिखने लगे। कभी हैदराबाद, कभी अहमदाबाद, दिल्ली, मुम्बई और अनेक छोटे-छोटे शहरों में ऐसा क्यों हो रहा है? इसे कौन करता है, उग्रवादी कैसे होते हैं, विनीत का चित्त उसी ताने-बाने को बुनता रहता और अपने अनुमान को समझने-बूझने के प्रयास में वह एक दिन अपनी पढ़ाई, घर-बार सब छोड़ करके मुम्बई की ट्रेन में बैठ गया। ट्रेन से उतरकर उसने उस महानगरी में अपने को पूरी तरह से भटकने के लिए छोड़ दिया। धरती उसका बिछौना बन गई और आकाश तकिया। सतत पिता के प्रति आक्रोश रहने के कारण उसका चित्त कहीं लग नहीं पाता था। पिता और माँ ने भरसक कोशिशें कीं उसे ढूँढ़कर लौटा लाने की, लेकिन उनकी सारी व्यक्तिगत और सरकारी योजनाबद्ध कारवाई पर विनीत ने चूहा-बिल्ली की तरह डटकर मुकाबला किया। विनीत के लिए अपनी स्वतन्त्रता को रखने के लिए मौत को अंगीकार करना स्वीकार था। शायद इस भयानक युद्ध को गत कई वर्षों तक सतत चलाने के लिए वह अकेला न था, वह अनेक अपराधी तत्त्वों की छत्रछाया में छुपते-छुपाते हुए कब किशोर अवस्था से वयस्क बन गया उसे पता न चला। उसे अपने नाम 'विनीत' की पहचान को भुला देने में अपनी जाति, धर्म, माँ-बाप की प्रतिष्ठा, पद, जन्मस्थान आदि से छुटकारा मिल गया था। वह घर से बाहर भीड़ में कब 'मौजी' बन गया उसे अब याद नहीं। वह तो गुरुद्वारे, मन्दिर, मस्ज़िद आदि का खाना खाकर जवान हुआ था। छोटा-बड़ा काम करके पेट भरना, दूसरे के माल को अपना बनाने में वह साम, दाम, दंड, भेद नीति का चतुरता से उपयोग करता और पुलिस के जाल से कैसे बचा जाए, उसे वैसा ही सम्भव लगता जैसा शिकारी की जाल से जानवर अपना बचाव कर लेता। उसकी इस चतुरता से आकृष्ट होकर एक आतंकवादी गिरोह के नेता ने उसे अपना चेला बना लेने के लिए कहा।

"अब तुम गबरू जवान हो गए हो, किसी गुरु-उस्ताद के पास जाकर गंडा-ताबीज बँधवा लो।"

"उसकी क्या जरूरत है? मैं किसी के नीचे काम करना पसन्द नहीं करता, मेरा नाम मौजी है।" कहकर वह हवा के झोंके की तरह बढ़ गया। लेकिन उसकी इसी निडरता से प्रभावित हो जाने के कारण वह नेता उसका कैसे पीछा छोड़ देता?

"कोई बात नहीं है, तुम तो अपने पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देते हो, मैंने कब कहा मेरा चेला बनो। अपने काम की कीमत माँगो, तुम्हारी मुँह माँगी कीमत पर अपना काम करवाने का हौसला रखता हूँ।"

"कीमत तो काम जानकर माँगी जाती है, कितना जोखिम का काम है आपके पास?"

"वह तो तुम्हारे राज़ी होने पर बता दी जाएगी, लेकिन हमारे गिरोह में शामिल होने के कायदे-कानून हैं, उससे पहले तुम्हें पूरी तरह..."

"यानी मुझे आपका कलमा पढ़ना पड़ेगा।" बात को काटते हुए मौजी आगे बढ़ने लगा।

"अरे, पूरी तरह बात को सुनो, कहीं बैठकर खाते-पीते हैं, तुम्हें वहीं पर पूरी जानकारी दे दूँगा, लेकिन उससे पहले तुम्हें वायदा करना होगा कि तुम सारी बातें किसी को नहीं बतलाओगे।"

वह तो वायदा दूँगा, मेरा अपना कोई यार, दोस्त नहीं है, रहने का ठिकाना भी नहीं है। रात किसी गुरुद्वारा, मस्जिद, मन्दिर, सराय जहाँ बिस्तर का सहारा मिला, गुज़र जाती है, ऐसे ही मौज-मस्ती में बचपन से जवान हुआ हूँ, मुझे रोज़ के 100 रुपए मिल जाएँ इससे ज़्यादा मैं कभी नहीं कमाता हूँ, इसी में मेरा गुजारा हो जाता है।

"क्या? बस तुम्हें 100 रु. रोज में खरीदा जा सकता है?"

"मैं गुलाम नहीं हूँ जो आप 100/- रु. रोज में खरीद सको, ज्यादा पैसा मैं जब भी कमाता हूँ वह गरीबों में और जहाँ कहीं ठहरता हूँ वहीं दे देता हूँ।"

"अरे वाह! तुम तो बड़े दिलवाले हो, चलो मेरे साथ, जिस होटल में चाहो, वहीं बैठकर बातचीत करते हैं।" कहकर वह नेता मौजी को एक तीन स्टार के होटल में ले गया। उस गुप्त मंत्रणा के बाद से दोनों में दिन-पर-दिन घनिष्ठता बढ़ती गई। मौजी उसके साथ मिलकर कई अन्य गुप्त स्थानों में गया, वहाँ की चहल-पहल में उसका मन लगने लगा। नेता का अंगरक्षक-सा बन जाने के कारण उसका उचित सम्मान होता। नई संगति में उसने कई व्यसन सीख लिए, पूरी तरह निशानेबाजी, निर्दयता से जानवरों को मार डालना, बातचीत में गाली-गलौज करना,

नेतागिरी करना आदि में शीघ्र पारंगत होने के कारण नेताजी उसे अपराधी जगत के काम सौंपने लगे। वह ऐसे कामों में मन लगाकर जब विजयी होता तो नेताजी उसको अपना बेटा कहकर छाती से लगा लेते।

"बेटा, माँग जो चाहे सो माँग, मेरे बाद तुझको ही अब ये सब देखना होगा, लेकिन पहले वायदा कर कि...।"

"क्या अभी भी कुछ वायदा करना बाकी है? उस्ताद आपको किसी भी कीमत पर मुझे रोककर रखने की कोशिश नहीं करनी चाहिए...मुझे आपका वारिस होना कबूल नहीं..." कह कर मौजी तैश में चल दिया।

नेता समझ न सका, यह इतना भड़क क्यों उठता है, और लोग तो इस पद को पाने के लिए आपस में झगड़ते रहते हैं। यह है कि 100 /- रु. रोज़ से अधिक पैसों की लालसा भी नहीं करता, क्यों फिर यह दिन भर मारा-मारा फिरता रहता है?

अपराध जगत की अपनी सीमाएँ, मान्यताएँ और जिन्दगी होती हैं, मौजी उसमें रच-बस गया था, उसके जीवन में किसी बन्धन में न बँधने की कटिबद्धता थी, नेता भी उसकी इस लगन से हैरान था। मानो पैसा, पद, शोहरत आदि किसी से मौजी को मोह न था। उसको अधिक विश्वास पात्र बनाने के लिए नेता ने अपने कार्यालय के बड़े प्रबन्धकों से विचार-विमर्श किया। मौजी की कार्यकुशलता के बारे में जानकारी देने के बाद यह निर्णय लिया गया कि इसे 'जिहाद' के कामों में लगाया जाए, ऐसा व्यक्ति जिसे अपनी जानमाल, किसी की परवाह न हो, केवल लक्ष्य-प्राप्ति ध्येय हो, वही ऐसे कामों को अंजाम दे सकता है। लेकिन मौजी तो पूरा नास्तिक है, उसे 'जिहाद' के काम में कैसे लगाया जा सकता? पता नहीं उसका क्या धर्म है? नेता के साथ रहकर वह नमाज़ पढ़ते समय झुककर उसका पूरा साथ अवश्य दे देता है, रोज़े के दिनों में खैरात में आगे बढ़कर नेता का साथ देता है, मगर वह मुसलमान नहीं है, यह बात नेता को पता है, हैरानी है फिर भी नेता ने चाहा कि मौजी को जिहाद के कामों में लगाया जाए। बड़े प्रबन्धकों में सबकी सलाह हुई कि नेता पहले मौजी का धर्म परिवर्तन और इस्लाम की शिक्षा देने के लिए मौलवी साहब के पास उसको लेकर जाए।

नेता को उनका सुझाव ठीक लगा और उसे मौज़ी को इस बात के लिए राज़ी करने में कोई खास दिक्कत नहीं हुई। मौज़ी ने कभी धर्म के बारे में समझने की जरूरत नहीं समझी थी। वह तो दरिया की तरह जहाँ बहकर जाता उसी तट को काटकर आगे बह जाता। नेता के कहने से वह मौलवी जी और मदरसे की शिक्षा लेकर एक तरह से मुसलमान बन गया, लेकिन उसका हृदय नास्तिक रहा, वह खुद नहीं जानता कि इन लोगों के बहकावे में आकर क्यों मुसलमान बन बैठा है? नेताजी

की छत्रछाया में मौजी का जीवन कई देश–विदेश की यात्राओं में सिमट कर बढ़ता गया। उसे अपने रहन–सहन में बचपन बीते न्यूयार्क, फिर दिल्ली, मुम्बई आदि की सीमाओं से लगाव न रहा, सब ही जगह उसे बड़े खून–खराबे के काम सौंपे जाते, जिन्हें अंजाम देकर सो जाना और अपना आगा–पीछा कुछ सोचना नहीं, यही मौजी का वर्तमान में रहने वाला जीवन बन गया।

एक दिन उसे खबर मिली कि 'नेता' को कोई भयंकर रोग हो गया है, वह सब कुछ छोड़कर नेता से मिलने जब पहुँचा तो वहाँ नेता मृत्युशय्या पर पड़ा मिला। मौज़ी के लिए मृत्यु हादसा न थी, अनेक बार उसने लहू–लुहान शरीर को दम तोड़ते देखा था, एक नहीं, कतार में बिखरी हुई लाशों के बीच अपना रास्ता खोजकर वहाँ से भाग सकने में समर्थ था। लेकिन नेता की दम तोड़ती हुई यातना वह सहन न कर सका, उसके आँखों से आँसुओं की धार निकल पड़ी। वह एक अबोध बालक की तरह सुबक–सुबककर रोने लगा। आस–पास बैठे लोग उसे ढाँढस देने लगे। सबने उसे चुपचाप अल्लाह से दुआ माँगने की सलाह दी। अपने को बेहद टूटा महसूस करने की अपेक्षा वह तीर–सा वहाँ से भाग लिया। आज उसे अपनी माँ की याद सताने लगी। कहाँ होगी उसकी माँ? क्या वह उसे सहारा देगी, वह तो कानून की नज़र में एक भयंकर आतंकवादी है। नहीं...उसे माँ के आँचल में पनाह कैसे मिलेगी? सतत माँ–माँ कहकर उसका हृदय विदीर्ण हो उठा, 'मुझ जैसे अपराधी को अब कौन क्षमा कर सकता है?'

आज नेता की मृत्युशय्या ने मौजी को वर्षों खोए हुए बालक विनीत का चोला पहना दिया। उसकी चेतना में माँ की दी हुई बचपन की सीख कौंध उठी। जड़–चेतन सबमें ईश्वर का वास है, अपराधी में भी। शरणागत होने पर ईश्वर ही केवल रहता है। जड़, चेतन, पाप, पुण्य आदि के सारे भेद समाप्त हो जाते हैं। अनैतिक, नैतिक, दया, प्रेम आदि की सीमा से परे हो गया है मेरे विश्वास का अटूट बन्धन, जिहाद का मायाजाल जिसमें मैं फँसा हूँ, मृत्यु तक।

❐

विक्षोभ

वह स्वयं आश्चर्यचकित थी, मरणशय्या पर पहुँचकर कैसे रही जीवित? कहते हैं बुढ़ापे का शरीर रोग को झेल नहीं पाता। कई दिनों से तेज ज्वर उसे लगातार आता रहा था, बेटे और पोते ने कल रात भर भीगी पट्टी रखकर ज्वर के तापमान को गिराने की कोशिश की थी। बहू तो उसके पास आकर केवल औपचारिकता मात्र में पूछताछ कर लेती थी। उसे लगता रहा था कि बुढ़िया यह बीमारी नहीं झेल पाएगी, कुछ दिनों की ही मेहमान है। मन-ही-मन बहू भगवान से प्रार्थना करने लगी थी, 'हे ईश्वर, इसके प्राण को ले जाने की कृपा करो, इसके प्राण बचाने की सतत कोशिश में मेरे पति और पुत्र दोनों अवश्य बीमार हो जाएँगे। नाहक ही दवा-दारू करने में गाढ़ी कमाई के पैसे लुटाए जा रहे हैं। कहीं अस्सी साल की बुढ़िया पर इतना अधिक व्यय किया जाता है?' अपने बुरे विचारों में उलझी बहू अपने ज्ञान को पति और पुत्र के समक्ष कहने में असमर्थ थी, किन्तु भगवान पर, और विशेषकर अपनी प्रार्थना पर उसे विश्वास था कि सास अब चली कि चली। लगा कि उसकी प्रार्थना एक दिन भगवान ने सुन ली, वह यह देखकर मन-ही-मन खुश थी कि पति और पुत्र ने आज सुबह बुढ़िया को शीतल चटाई पर बिठा दिया और उसके पास बैठकर गीता पाठ कर रहे हैं। कुछ देर बाद पति बाहर जाने की तैयारी में था, अपनी जिज्ञासा को दबाने में असमर्थ हो बोल पड़ी—

"इस समय आप कहाँ जा रहे हैं? आपकी ओर तो अम्माँ जी टकटकी लगाए रहती हैं, आपको सामने न देखकर उनके प्राण ...।"

"चुप रहो अभागी मोहनी, अम्माँ को मेरे से अधिक डॉक्टर की जरूरत है, मैं उन्हें अस्पताल में भरती करने की कोशिश में जा रहा हूँ। डॉक्टर माथुर का कहना है कि उन्हें नए डॉक्टरी उपकरणों की तथा निदान की आवश्यकता है जो मेरे घर में उपलब्ध नहीं करवाए जा सकते हैं।

"आप अन्तिम समय में अस्पताल में भरती करवाकर उनकी मिट्टी-पलीद क्यों करवा रहे हैं, उन्हें शान्ति से घर में प्राण त्यागने दीजिए, इसी में हम सबकी भलाई है।"

विक्षोभ

वह स्वयं आश्चर्यचकित थी, मरणशय्या पर पहुँचकर कैसे रही जीवित? कहते हैं बुढ़ापे का शरीर रोग को झेल नहीं पाता। कई दिनों से तेज ज्वर उसे लगातार आता रहा था, बेटे और पोते ने कल रात भर भीगी पट्टी रखकर ज्वर के तापमान को गिराने की कोशिश की थी। बहू तो उसके पास आकर केवल औपचारिकता मात्र में पूछताछ कर लेती थी। उसे लगता रहा था कि बुढ़िया यह बीमारी नहीं झेल पाएगी, कुछ दिनों की ही मेहमान है। मन-ही-मन बहू भगवान से प्रार्थना करने लगी थी, 'हे ईश्वर, इसके प्राण को ले जाने की कृपा करो, इसके प्राण बचाने की सतत कोशिश में मेरे पति और पुत्र दोनों अवश्य बीमार हो जाएँगे। नाहक ही दवा-दारू करने में गाढ़ी कमाई के पैसे लुटाए जा रहे हैं। कहीं अस्सी साल की बुढ़िया पर इतना अधिक व्यय किया जाता है?' अपने बुरे विचारों में उलझी बहू अपने ज्ञान को पति और पुत्र के समक्ष कहने में असमर्थ थी, किन्तु भगवान पर, और विशेषकर अपनी प्रार्थना पर उसे विश्वास था कि सास अब चली कि चली। लगा कि उसकी प्रार्थना एक दिन भगवान ने सुन ली, वह यह देखकर मन-ही-मन खुश थी कि पति और पुत्र ने आज सुबह बुढ़िया को शीतल चटाई पर बिठा दिया और उसके पास बैठकर गीता पाठ कर रहे हैं। कुछ देर बाद पति बाहर जाने की तैयारी में था, अपनी जिज्ञासा को दबाने में असमर्थ हो बोल पड़ी—

"इस समय आप कहाँ जा रहे हैं? आपकी ओर तो अम्माँ जी टकटकी लगाए रहती हैं, आपको सामने न देखकर उनके प्राण ...।"

"चुप रहो अभागी मोहनी, अम्माँ को मेरे से अधिक डॉक्टर की जरूरत है, मैं उन्हें अस्पताल में भरती करने की कोशिश में जा रहा हूँ। डॉक्टर माथुर का कहना है कि उन्हें नए डॉक्टरी उपकरणों की तथा निदान की आवश्यकता है जो मेरे घर में उपलब्ध नहीं करवाए जा सकते हैं।

"आप अन्तिम समय में अस्पताल में भरती करवाकर उनकी मिट्टी-पलीद क्यों करवा रहे हैं, उन्हें शान्ति से घर में प्राण त्यागने दीजिए, इसी में हम सबकी भलाई है।"

"मुझे मालूम है क्या करना चाहिए, बस तुम शान्त रहो और घर-बार और अपनी गृहस्थी को संभालकर रखो।" दृढ़ता से कहकर रघुवीर घर से कोट की जेब में चेकबुक एवं नगद राशि लेकर निकल पड़ा।

मोहनी का मन अनेक आशंकाओं से भर उठा, पति की हठधर्मी के आगे उसे सदैव नतमस्तक होना पड़ा है। आज कौन अनोखी बात है, अपने गुस्से के उबाल पर चुप्पी का मखौटा लगाकर वह सास के पास आकर बैठ गई। उनकी साँस काफी तेज चल रही थी, पैर ठंडे पड़ने लगे थे, नाड़ी देखने की उसने कोशिश की लेकिन उसे कुछ पता नहीं लग पाया, बेचैनी में वह पुत्र से इतना ही कह पाई।

"मोन्टू, कब तक गीता पढ़ते रहोगे? क्या दादी की अर्थी के साथ चिपककर स्वर्ग जाने का मन बना रहे हो, जो भी आया है वह एक दिन अवश्य जाएगा, यही तो गीता का सार है। फिर क्यों यहाँ बैठकर अपना समय बरबाद कर रहे हो, देखती हूँ कुछ दिनों से तुम्हें इस बुढ़िया के अलावा अपना कोई अपना नहीं दिखता। तुम्हें तो अपनी दिनचर्या का भी ख्याल नहीं रहता, पढ़ाई तो दूर की बात है, तुम और तुम्हारे पिता, दोनों न जाने कौन-सी मिट्टी के बने हो।"

"माँ, इस समय तो दादी को बुढ़िया कहकर अपमानित न करो, शान्त रहो माँ, अगर तुम दादी का ...।"

"शान्ति का पाठ तुम्हारे पिता देकर अस्पताल की ओर निकल पड़े हैं, सूप तो सूप अब चलनी भी...।"

"अच्छा! पिताजी दादी को अस्पताल में भरती करवाने के लिए गए हैं।" अपने उत्साह को मोन्टू रोक नहीं पाया, जिसे देखकर मोहनी अत्यधिक उत्तेजित हो चीख पड़ी।

"तुम बाप, बेटा दोनों ने घर में जीना दूभर कर दिया है। अच्छा है यह बुढ़िया अस्पताल जाकर दम तोड़े। इसके प्राण आसानी से निकलनेवाले नहीं हैं। क्या इस घर में कोई दूसरा प्राणी नहीं दिखता, हमें भी चैन से जीने का अधिकार दो।" कहकर मोहनी पैर पटकती हुई रसोई घर में आ बैठी। वहाँ आकर उसे सूझ नहीं रहा था कि क्या करे। खाना पूरा बनाने के बाद यदि बुढ़िया के प्राण निकले तो पड़ोसिन आकर उसे अवश्य प्रताड़ित करेंगी। 'जब वयोवृद्ध प्राणी अन्तिम साँस ले रहा हो तुम अपनी रसोई में बैठकर खाना बनाती रही, अरे हमें ही बुला लेती। ऐसे समय में रामधुन सुनानी चाहिए, तुलसीदल, गंगाजल आदि का प्रबन्ध हम आकर कर देते।' अपने को अपराध भावना से मुक्त करने के प्रयास में मोहनी ने गैस पर दाल चढ़ा दी और जाकर फ्रिज में से सब्जी निकालने लगी। वहाँ रात की बनी हुई सब्जी बर्तन में भरी हुई दिखी, जिसे देखकर उसे पति एवं पुत्र पर खीज हो उठी। लगता है उन

दोनों ने रात का भोजन ठीक से नहीं किया। डबल रोटी खाकर अपनी माँ की सेवा में लगे रहे होंगे। लेकिन रात की बनी रोटियाँ तो खत्म हो गई हैं, शायद बची-खुची रोटी और रसदार सब्जी खाकर रह गए होंगे। क्यों न आज भी बाप और बेटे को बेमन से बना हुआ खाना खिला दे, पहले पति दाल-भात खाकर, फिर रात की सब्जी बनी हुई है, उसी से सन्तुष्ट हो जाएँगे। उसका क्या है? बचा-खुचा खाना खाने की आदत है, इस घर में ब्याह के जब से आई है सबको भोजन खिलाने के बाद जो बच जाता वही उसे खाने में मिलता रहा है। शायद इस बुढ़िया के मरने के बाद उसे पति और पुत्र के साथ टेबिल पर खाना खाना नसीब हो।

"मोहनी, बाहर अस्पताल की गाड़ी खड़ी है, अम्माँ जी को तैयार करके बाहर स्ट्रेचर से ले जाना पड़ेगा।" पति की चेतावनी भरी आवाज सुनकर मोहनी की विचारतन्द्रा टूट गई। उसे पति, पुत्र दोनों मशीन की तरह अपनी माँ को अस्पताल की गाड़ी में पहुँचाने में व्यस्त लगे, ऐसे में वह भी अनमने भाव से उनके साथ जुटी रही।

शायद डॉक्टर लोग बुढ़िया की साँसों को लौटा लाएँ, यह विचार उसके चित्त को अत्यधिक बेचैन करने लगा, वह समझ न पा रही थी जिस कार्य को पति, पुत्र इतनी अधिक एकाग्रता से कर रहे हैं वह स्वयं भविष्य की आशंका से क्यों परेशान हैं?

"अरे, अम्माँ जी को अस्पताल में भरती करवा दिया गया है, तुम्हारे दरवाजे पर अस्पताल की गाड़ी खड़ी दिखी तो मैं घबड़ाकर हालचाल पता करने आ गई।" पड़ोसिन के ये शब्द सुनकर मोहनी सजग होकर बोली—

"उनका रात भर तो आग-सा शरीर जलता रहा है, मेरे पति और पुत्र ने किसी तरह रात बिताई, अब सुबह अस्पताल में भरती करवाकर वहाँ का इलाज होगा, देखो क्या होता है।"

"अच्छा किया जो उन्हें अस्पताल में भरती करवा दिया गया। वैसे बुढ़िया बड़ी जीवट है, इतने आसानी से उसके प्राण नहीं निकलने वाले हैं।" पड़ोसिन की बात मोहनी को हितकर लगी, दोनों बैठकर पास-पड़ोस की चर्चा में इतनी अधिक व्यस्त हो गईं कि उन्हें समय का भान न रहा। रघुवीर जब अस्पताल से घर पहुँचा तब दोनों महिलाओं की हँसी भरी आवाज़ सुनकर अवाक् रह गया। ऐसे समय में इन दोनों महिलाओं को हँसी-मज़ाक कैसे सूझ रहा है? उसे लगा कि उसके घर में टिड्डीदल का आक्रमण है जिसे विनष्ट करना उसका कर्तव्य है। लेकिन गीता में सुबह उसने पढ़ा था कि जो जन सब प्राणियों के प्रति द्वेष-रहित है, सबका मित्र है, दयावान है, ममतारहित है, अहंकार वर्जित है, सुख-दुख में सम है, क्षमावान है, जो भी स्थिति हो उसी में सुखी है, जो निश्चय किया है उस पर दृढ़ और डाँवाँडोल नहीं होता वही ...।"

''आप कब आ गए अस्पताल से हमें पता ही नहीं लग पाया। खैर हाथ-पैर धो लीजिए, नहा लो तो ज़्यादा अच्छा होगा। वहाँ तो मानो नरक होता है, पेशाब, खून और मरीज़ों की चीख-पुकार, घरवाले हाल-बेहाल घूमते हुए नज़र आते हैं।'' पत्नी के शब्द सुनकर रघुवीर संज्ञाविहीन-सा था, लेकिन गृहस्थ जीवन में एक चुप, सौ सुख।

''आप इतने चुपचाप निराश क्यों लग रहे हो?''

''सहेली को पहले विदा कर दो। मैं तब तक नहाकर आता हूँ, मोन्टू कहाँ गया है?'' रघुवीर ने पूछा।

''मुझे तो बहुत देर से दिखा नहीं, मैं तो समझ रही थी कि वह आपके साथ अस्पताल गया है।''

रघुवीर को अपने अनुमान के अनुसार मोन्टू दादी की खाट पर सोता हुआ मिला। किशोर अवस्था में पूरी रात भर जगने का उसका पहला अनुभव था। वैसे भी वह दादी के साथ एक खाट पर रोजाना सोता था जिसको लेकर मोहनी का मन ईर्ष्या से भरा रहता, उसका इकलौता बेटा उसके पति की मातृभक्ति के कारण दादी का लाडला बना फिरता है।

''मोहनी, मेरे कपड़े स्नानगृह में रख दो कृपया ...'' रघुवीर ने पुकारा।

''अभी आई, मैं मोन्टू की खोज-खबर लेने चली गई थी, वह तो बेसुध अपनी दादी की खाट में पड़ा है, यह भी ख्याल नहीं है कि यहाँ तेज़ ज्वर में तपती हुई उसकी दादी अन्तिम साँसें इसी खाट पर ले ...।''

''तुमसे किसने कहा कि वह अन्तिम साँसें... खैर अस्पताल में भयंकर रोगी ठीक समय पर पहुँच कर वहाँ से सकुशल लौट आते हैं।''

यह सुनकर मोहनी बजाय खुश होने के अधिक कुंठित हो उठी। इस घर से उसकी बुढ़िया-सास का शासन खत्म होने वाला नहीं, उसे तो सबकी चाकरी ही करनी होगी। कहा गया है कि किसी भी मनुष्य को मृत्यु से पहले खुश करना असम्भव, जिसकी किस्मत में जो लिखा है वह कौन मिटा सकता है।

घर-गृहस्थी, अस्पताल के चक्कर लगाने में समय कब बीत गया किसी को पता नहीं चला। एक दिन जब रघुवीर अपनी बुढ़िया माँ को सकुशल अस्पताल से लेकर आया, उस दिन मानो घर में उत्सव का वातावरण था। माँ ने अधीर स्वर में रघुवीर से विनती की, ''बेटा, मुझ बुढ़िया को नाहक यमराज के द्वार से तुम लौटा लाए हो, मेरे लिए तुमने अपना पैसा पानी की तरह बहाया है, मेरे लिए दान-पुण्य और न जाने क्या-क्या पापड़ बेले हैं, लेकिन तुम्हारी जीवनसाथी पत्नी को इस वजह से जो मानसिक क्लेश है वह मेरे से छिपा नहीं है, वह कहेगी यह बुढ़िया काले कौवे खाकर आई है, फिर मेरी छाती पर उरद ...।''

"माँ, तुम उसकी बात का बुरा न मानो उसी में हम सबकी भलाई है। तुम्हारे लिए रामनाम आराधन ही सच्चा तारक है, मेल मिलाप, सामाजिक-जीवन और पारिवारिक-जीवन सब कुछ तुमने देखा है। मोहनी को दूसरों को आदर देना, मीठी वाणी बोलना नहीं आता, वह तो हरिद्वार में पंडे को पैसा देकर, गंगाजी में डुबकी लगाकर अपने पाप धोने में विश्वास रखती है, उसका यह विश्वास शायद इस कालचक्र को अवश्य काट देगा।"

"रघुवीर, परन्तु मेरी वजह से तुम्हारे घर में विशेषकर तुम्हारी पत्नी को क्लेश है, मुझे हरिद्वार ले जाकर किसी वृद्धाश्रम में भर्ती करवा दो, उसी में ..."

"बस माँ, अपने को इतना अधिक अपनों से विलग न करो। जिसके पास बोलने को मीठी वाणी नहीं, करने को कर्तव्यनिष्ठा न हो, ऐसे जन तो आसुरी प्रवृत्ति वाले कहलाते हैं।" कहकर रघुवीर दफ्तर चला गया। लेकिन माँ को अगाध विक्षोभ सागर में अपना किनारा ढूँढ़ लेने के लिए बुढ़ापे में वह कैसे अकेला छोड़ सकता है?

रघुवीर दफ्तर से लौटकर माँ की खोज-खबर लेने जब घर में घुसा उसके कानों में मोहनी के ये कटु शब्द थे, "क्या हम लोगों ने ही तुम्हारी सेवा का ठेका ले रखा है, क्यों नहीं अपने बड़े बेटे के पास जाती हो, तुम्हारा ठौर तो यमराज के पास में भी नहीं था, इसीलिए लौट आई हमारी छाती पर उरद दलने ...।"

"बस मोहनी, यदि तुम्हारे पास दया, धर्म नहीं है तो तुम्हें भी बुढ़ापे में अपना कोई पानी देनेवाला न दिखलाई देगा।" रघुवीर ने माँ हाथ थामकर प्रतिवाद किया।

"हाँ, मैं तो गँवार, अनपढ़ हूँ, कोस लो तुम भी।" कहकर मोहनी फफक-फफककर रोने लगी। रघुवीर को मोहनी के इस तिरिया चरित्र से बेहद नफ़रत थी, ऐसे में वह कर्तव्यविमूढ़-सा हो जाता था। माँ ने स्थिति सँभालते हुए कहा, "हाँ, मैं विश्वनाथ के यहाँ चली जाऊँगी, कुछ दिन हवा-पानी बदल लेने से शरीर में शक्ति जल्दी आएगी। फिर बहू को भी मेरे चले जाने से आराम मिलेगा।"

"जब तुम पूरी तरह से स्वस्थ हो जाओ तब ही बड़े भइया के यहाँ जाने का विचार करना, मुझे और मोन्टू को तुम्हारे बिना घर सूना-सूना लगेगा।"

"मैं सब दिनों के लिए थोड़ी जा रही हूँ, मैं किसी से नाराज़ नहीं हूँ। मेरी ओर से सब लोग राज़ी खुशी रहें, फूलें-फलें।"

मोहनी सास के शब्द सुनकर पिघल गई, "वहाँ तो आपको बातचीत करनेवाला भी नहीं मिलेगा। आपकी बड़ी बहू सुबह-सुबह काम के लिए निकल जाती है, भइया के साथ ही। उनके बच्चे सब विदेश में बस गए हैं। घर का काम ज्यादातर मशीनों द्वारा होता है, एक बाई आकर घर का और रसोई का काम कर जाती है,

बम्बई में आस-पड़ोस से कोई मतलब नहीं होता, वहाँ आपको सत्संग भी नहीं मिल पाएगा।''

''अब इस उम्र में हाल-चाल पूछनेवाला मिले या न मिले, कोई फर्क नहीं पड़ता। कपड़े धोने की अवश्य परेशानी होगी क्योंकि मुझे मशीन से कपड़े धोना नहीं आता, फिर 'जहि विधि राखें राम, तहि विधि रहिये।'''

''अगर आपने मन बना लिया है तो जैसी आपकी इच्छा।'' कहकर मोहनी ने औपचारिकता निभाई।

रघुवीर को जैसा अनुमान था, बड़े भइया स्वयं आकर माँ को बम्बई ले गए। केवल टेलीफोन पर बातचीत में माँ की इच्छा उनके पास आने की है, उसे इतना भर कहने की जरूरत थी। माँ के जाने के बाद से रघुवीर पत्नी से पहले से अधिक दूरी रखने लगा। मोन्टू भी खिंचाखिंचा-सा रहता। यह मौनसन्धि मोहनी के लिए कष्टदायक न थी, उसे पता था कि समय के साथ पति, पुत्र दोनों सहज हो जाएँगे। उसकी सास में अदम्य योद्धा की शक्ति है, वह बुढ़ापे को हर परिस्थिति में झेल लेगी, जब तक मृत्यु आकर उन्हें अंगीकार नहीं करती। उनका शेष जीवन घर में न निभा, तो बम्बई महानगरी के वृद्धाश्रम में बड़े भइया की पत्नी उन्हें भर्ती अवश्य करवा देगी।

❒

निन्नी की शरणागति

मैंने सबको अपना निश्चय बता रखा था कि 'बन्नी' उपन्यास जो कि मेरे पालतू कुत्ते की संस्मरणात्मक शैली में लिखी गई हिन्दी में छपी कृति है, अपने दूसरे पालतू कुतिया जिसकी सुन्दर अति लुभावनी आँखों को देखकर मैंने उसका नाम 'निन्नी' रख दिया, उसके बारे में कदापि नहीं लिखूँगी। श्रीयुत वृन्दावनलाल वर्मा की 'मृगनयनी' उपन्यास को मैं पढ़ रही थी जब 'निन्नी' का आगमन मेरे घर में अनायास हुआ। बन्नी की मृत्यु के बाद कई बार मैंने चाहा कि दूसरा कोई कुत्ते का बच्चा लाकर पाल लूँ पर मेरी मनोकामना अधूरी रही।

एक दिन सुबह टहलते समय एक कुत्ते का बच्चा मेरे पैरों पर आकर लिपट गया, मन में कचोट उठी, मैंने उस पिल्ले को घर में लाकर ठंडा पानी पिलाया और गर्म दूध, रोटी आदि देकर उसकी क्षुधा शान्त की। किन्तु वह पिल्ला आसन जमाकर मेरे घर में जमकर बैठ गया, लाख कोशिश की, वह जाने को तैयार न था, हम प्यार में उसे 'कोजी' बुलाने लगे। वह देखते-ही-देखते बड़ा होने लगा और अपनी बाल-सुलभ शैतानियों से बड़ा मनमोहक लगता, माना वह कोई विशिष्ट ब्रीड (जाति) का कुत्ता न था। स्वभाव से वह चपल था और अत्यन्त निडर। एक दिन किसी कुत्ते का पीछा करता हुआ वह हमारी आँख से ओझल हो गया और मुड़कर घर वापस नहीं आया। उसको ढूँढ़ने के काफी प्रयास किए गए लेकिन कहीं भी उसका अता-पता न मिला। एक दिन अचानक मेरे नौकर ने आकर सूचना दी कि पास के गाँव में 'कोजी' को चेन में बाँधकर एक बच्चा घुमाते देखा गया। नौकर ने कोशिश की कि कोजी का ध्यान वह अपनी ओर करे, लेकिन कोजी गर्दन झुकाए उसी नए मालिक के साथ रहा, जब उसने लड़के से पूछा, ''यह कुत्ता कहाँ से मिला?''

''यह हमारे घर तो तीन दिन से रह रहा है, तुम्हारा है तो ले लो।'' वह लड़का गुरु गम्भीर मुद्रा बनाते हुए कोजी की चेन खोलने लगा, नौकर को लगा कि कोजी स्वतन्त्र होकर उसकी ओर लपककर वापस आ जाएगा किन्तु वह निरीह पशु मासूमियत से दोनों मालिकों के बीच खड़ा लाड़-दुलार पाने के लिए अपना माथा

हिलाने लगा। मेरे नौकर को जो अनुशासन प्रिय था इस भगौड़े कुत्ते पर क्रोध आ गया, वह कोजी को वापस नहीं लाया, उसका कहना था, ''ऐसा कुत्ता जो सबके सामने पूछ हिलाने लगे, सबसे प्यार-दुलार पाने का इच्छुक हो, वह घर की चौकीदारी नहीं कर सकता।''

मेरे आस-पड़ोस के बच्चों को यह जानकर कि पास के गाँव में कोजी को पकड़ कर रख लिया गया उपने अधिकारों का हनन-सा लगा। वह एकजुट होकर 'कोजी' को वापस लाने की योजनाएँ बनाने लगे, लेकिन मैंने प्रतिवाद किया, मैं भी अपने नौकर की सीख के विरुद्ध जाने के लिए तैयार न थी।

किशोरावस्था के मेरे पड़ोस के बच्चों में इस घटना को लेकर आपस में काफी चर्चा अवश्य हुई होगी लेकिन इसकी जानकारी मुझे तब ही हो पाई जब शनिवार की दुपहर मैंने अपनी सीढ़ियों पर बैठे बच्चों को आपस में फुस-फुस करते हुए देखा, मुझे देखते ही वह लोग एक स्वर में तपाक से बोल उठे, ''आज आप अपने दफ़्तर से इतनी देर से क्यों आई हैं? हम बड़ी देर से आपकी राह देख रहे हैं, आपके लिए एक सरप्राइज़ (आश्चर्य) है।''

''कैसी विस्मय भरी जानकारी, जो आप सब लोग इतनी दुपहर में अपना-अपना घर छोड़कर मेरे इन्तजार में इतनी देर से यहाँ रुककर मुझे देने वाले हैं, जल्दी बतलाइए।'' मेरी जिज्ञासा चरम सीमा पर थी।

''बस आप हमारे साथ चलिए, घर में बाद को घुसिएगा।'' मैं भी उन किशोर-किशोरियों के रहस्योद्‌घाटन की योजना जान लेने के लिए उनके पीछे हो ली। हम लोग पड़ोस के शर्मा जी के घर की घंटी बजाकर अपनी साँस रोककर खड़े हो गए। मिसेज़ शर्मा ने किवाड़ खोला और हम सब को वहाँ ही दबे पैर बाहर खड़े रहने का आदेश दिया, घर के भीतर से उनके दो कुत्तों की आवाज़ें बुलन्द हो रही थीं। हममें से किसी का इतना साहस न हुआ कि अन्दर झाँककर देख भी सकें, लेकिन मिसेज शर्मा के हाथ में एक काली बिल्ली जैसी शर्मीली सिकुड़ी बच्ची (कुतिया) को देखते ही सबके मुँह पर खुशी की लहर दौड़ पड़ी।

''इसे जल्दी से लेकर अपने घर भाग जाओ, नहीं तो इसके माँ- बाप तुम्हें ...''

बीच में रोककर, ''आप चिन्ता न करें, हम इसे बड़े प्यार से रखेंगे।'' कहते हुए नेहा ने उस कुतिया को स्नेह से अपनी गोद में ले लिया। किशोरी नेहा का मातृत्व भाव देखकर मैं कुछ कहने-सुनने में असमर्थ थी, बच्चों की आवाज़ ने मुझे सजग किया, ''देखा आंटी, यही सरप्राइज़ हमें देना था, यह कोजी की तरह भागकर नहीं जाएगी, आपको खूब प्यार करेगी, हमने मयंक और पीयूष से बातचीत तय कर

ली है, उनकी कुतिया 'रीना' ने छह बच्चे दिए थे, रीना को तो आपने देखा होगा, वह मयंक भइया के मोटर साइकिल के पीछे दौड़ती हुई मोती बाग तक अस्पताल पहुँच जाती है, उसके पहले सब ही बच्चे अच्छे-अच्छे घरों में गए हैं, तीसरी बार रीना ने जब बच्चे दिए तब ही से यह निश्चित हो गया था कि एक बच्चा हम लोग आपको देंगे।''

''यह तो वाकई बड़ी खुशी की बात है कि आप सब लोगों को 'कोजी' के जाने का मेरी तरह ही दुःख हुआ और इसीलिए आप मुझे यह नन्हा-सा प्यारा-सा उपहार दे रहे हैं, बहुत-बहुत धन्यवाद।'' कहते हुए मैंने प्यार से नेहा के हाथों से बच्ची को पकड़ लिया। अचानक मेरी निगाह उसके पैरों पर पड़ गई जो कि पीछे की ओर मुड़े हुए थे और उसके नाखून बेहद बढ़े हुए थे। उसकी कातर दृष्टि में डर और याचना का भाव उभरा हुआ था जिसे देखकर मेरा मन भावी आशंका से एकाएक भर गया, सहसा मेरे मुँह से निकल पड़ा, ''देखो बच्चो, यह कुत्ता नहीं कुतिया है, मैं पूरे दिन बाहर रहती हूँ, मेरा घर ऊपर का है, यह बेचारी कहाँ घूमेंगी, इसके बच्चे होंगे तो क्या करेगी? मयंक और पीयूष के घर में इसके माँ-बाप दोनों नीचे के घर में रहते हैं, सामने बगीचा है जहाँ उन्हें टहलने आदि की पूरी स्वतन्त्रता है। इसकी माँ जंगली सूअरों के झुंड को जिस फुर्ती से दौड़कर खदेड़ आती है, बड़ी होकर इसे मेरे यहाँ ऐसी कोई सुख-सुविधा नहीं मिलेगी।''

''कुत्ता मालिक का प्यार चाहता है, जो आप उसे पूरा देंगी।'' नेहा ने प्रतिवाद किया।

''लेकिन यह कुत्ता नहीं है, जो स्वतन्त्र इधर-उधर घूम सके, कुतियों को रखने में कई तरह की चौकसी करनी पड़ती है।''

''अरे हमें पता नहीं था कि आंटी आप भी लड़के-लड़की में फर्क करती हैं?'' खीजकर नेहा ने मुझे ललकारा।

''नेहा, बच्चे होने पर इसकी देखभाल कौन करेगा, यह तो पैरों से भी ...''

''देखिए आंटी जी, आप इसे शनिवार और इतवार भर रख लीजिए, हम इसके लिए सोमवार तक कोई अच्छा कुत्ता प्रेमी परिवार ढूँढ़ लेंगे। यदि इसके बच्चे होने पर देखभाल करने का प्रश्न है, तो हम हैं ना, हम तो आपके नीचे (ग्राउंड फ्लोर) वाले बड़े घर में रहते हैं, आप उस समय हमारे घर रख दीजिएगा।'' नेहा का तर्क अकाट्य था।

घर लाकर मैंने उसकी काली सुन्दर लुभावनी आँखों में अपने प्रति आकर्षण पाया, अत: उसका नाम 'निन्नी' रख दिया। वह अपने माँ-बाप से बिछुड़कर काफी संवेदित थी, मैंने उसे अपनी छत पर खुला छोड़ दिया, दुबककर वह फूलों से भरे

गमलों के पीछे छिपकर सो गई। शाम को जब मेरे नौकर की पत्नी 'गीता' आई, वह इस नवागन्तुक को देखकर भड़क उठी, "इसे कौन ले आया? यह तो इतनी छोटी सी है, काली-सी, मेरे पास अपना बच्चे का काम कम है जो इसे लाकर रख लिया है, मुझ से इसकी सेवा नहीं होगी।" गीता के स्वर में तल्खी के अलावा चेतावनी थी।

"अरे, यह तो पड़ोस के बच्चों ने मुझे सप्ताहान्त तक रखने के लिए लाकर दी है, क्या तुम्हें पसन्द नहीं आई? देखो, कितनी सहमी हुई गमलों के पीछे छिपी हुई है," मैंने गीता को आश्वस्त करने के लिए कहा था।

शाम तक निन्नी चुपचाप छत पर ही रही। मेरे नौकर ने आकर मुझे आश्वस्त किया, "दीदी, अच्छा है आप छोटी पिल्ली लाई हैं, वैसे भी कुतिया कुत्तों से ज़्यादा वफ़ादार होती है।"

"लेकिन गीता ने तो इसे वापस कर देने के लिए कहा है।" मैंने बीच में टोक कर कहा।

"गीता को कुत्ते-बिल्ली आदि कुछ पसन्द नहीं हैं, वह अपने खुद के बच्चे को बड़े कड़े अनुशासन में पाल रही है, उसे गन्दगी उठाने में नफ़रत होती है। आप कुछ दिन यह काम संभाल लें फिर गीता अपने-आप इसकी देखभाल कर लेगी। वैसे भी हमारा घर बन रहा है, हम आपका क्वार्टर छोड़कर चले जाएँगे। तब यही आपको कम्पनी देगी।" कहते हुए नौकर ने निन्नी को गमलों के पीछे से बाहर करने की कई बार कोशिश की, किन्तु निन्नी सहमी हुई इधर-उधर हो जाती। मैंने ही प्यार से उसे बाहर आ जाने के लिए पुचकारा, इस तरह सतत प्रयास करने के बाद निन्नी मेरे पुचकारने पर मेरे पास आने लगी, हम दोनों के मधुर सम्बन्ध की गाँठ बँध गई।

अगले कई दिनों तक गीता ने अपना असहयोग जारी रखा। मुझे काम छोड़ देने की धमकी भी दे दी। सोमवार के दिन पड़ोस के बच्चों का कोई अता-पता न था, मैंने दफ्तर से छुट्टी ली और निन्नी को अपने पास निगरानी में रखा, उसको नित्यकर्म करवाना, दूध पिलवाना आदि का सारा काम खुद किया, यहाँ तक कि मंगलवार को दफ्तर भी मैं निन्नी को अपनी गोद में बिठाकर ले गई। मेरे एक सहयोगी की पत्नी ने अपने पास उसे दिन भर के लिए रखा। यह सब देखकर गीता का हृदय परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक था क्योंकि नारी जाति जबान से कठोर हो सकती है, हृदय से नहीं। मैंने भी निन्नी की देखभाल, दवा-दारू आदि पूर्ण निष्ठा से की, इस तरह हम दोनों के बीच प्रगाढ़ स्नेह के अतिरिक्त निन्नी की तत्परता से नए वातावरण में, विशेषकर समय-समय से नित्यकर्म करना, खाना-पीना, उठना-बैठना और सोने आदि में एडजस्टमेंट (समायोजन) था जिससे प्रसन्न होकर गीता ने अपने बच्चे

'आरूल' की देखभाल जैसे करती थी वैसे ही निन्नी की देखभाल करने लगी, और उन कामों से मुझे निवृत्त कर दिया। निस्सन्देह निन्नी में नारीजन्य कमनीयता प्रचुर मात्रा में थी, जिसके आकर्षण में शिशु आरूल उसके साथ खेलता, पूँछ पकड़ता और कभी-कभी उसका मुँह भी चूम लेता, इस बाल-सुलभ क्रिया को गीता सहन न कर पाती, बेचारे 'आरूल' को रोकने के प्रयास में मार भी पड़ जाती। आरूल माँ की मार खाकर कुछ देर के लिए रोकर भूल जाता किन्तु निन्नी गीता के अनुशासन से सहमकर हमारे ड्राइंगरूम में पड़े हुए गलीचे में लिपटकर उसे इस तरह रोल कर देती मानो वह उसकी गुफा हो, उसी के बीच घुसकर वह दुबककर सो जाती, मुझे भय लगता कहीं एक दिन गलीचे के बीच हवा न मिलने से इसका दम घुटकर न रह जाए, लेकिन विधाता ने जानवरों को जन्म से ही ऐसा ज्ञान दिया है जो उन्हें जीवित रहने के लिए क्या अच्छा है, क्या बुरा, उन्हें यह सिखलाने की आवश्यकता नहीं होती। वह मनुष्य के बच्चे की तरह लालन-पालन के लिए आश्रित नहीं होते, सहज ही मालिक को अपना परम हितैषी, माँ-बाप से भी ऊँचा दर्ज़ा दे देते हैं। इसका भान मुझे तब हुआ जब मैं निन्नी को अपने पड़ोसी शर्मा जी के बगीचे के पास घुमाने गई। निन्नी के माँ-बाप घर के अन्दर बन्द होते हुए भी अपने बच्चे को ज़ोर-ज़ोर से भौंकते हुए बुला रहे थे किन्तु निन्नी उस ओर जाना भी नहीं चाहती, मिलना तो दूर की बात है। उसका निर्विकार भाव और नए मालिक के प्रति अपनी पूर्ण कटिबद्धता देखकर मैं हैरान थी, क्या यह गुण सभी कुकुर जाति में पाया जाता है? यदि हाँ तो फिर निन्नी के विषय में लिखने की क्या आवश्यकता? सभी कुत्ता मालिक जिस चाव से कुत्ते के शिशु को लाकर पालते हैं वे बड़े होकर उसी तरह अपनी स्वामिभक्तिता से घर की रखवाली करते हैं और परिवार के अभिन्न सदस्य बन जाते हैं, उनका साहित्य की बेढब दुनिया से क्यों नाता जोड़ा जाए? कुत्ते की मृत्यु के समय हर कुत्ता प्रिय परिवार में शोक की लहर दौड़ पड़ती है। किन्तु प्रिय निन्नी की मृत्यु ने मुझे पाठकों के समक्ष अपनी संवेदनाओं को प्रस्तुत करने के लिए बाध्य किया क्योंकि मेरे समझ में उसने एक लम्बी तपस्या की, अपनी मृत्यु को अंगीकार करने के लिए, अपने को दोषमुक्त होने के लिए मानो जिसे जैन धर्म में 'संथारा' कहते हैं किया। उस समय के बीच, उस दृश्य और मेरी दृष्टि के बीच भाँति-भाँति के आयाम हैं जिन्हें भाषा में गूँथ देने की मेरी क्षमता विवाद का विषय हो सकती है, किन्तु विषय-वस्तु को समझ सकने की कदापि नहीं। उस मूक प्राणी का टुकुर-टुकुर कर अपने अपराध-बोध से मुक्त होने की याचना करना, 25 दिनों तक अपना प्रिय भोजन ग्रहण न करना, मेरे लिए कितना हृदय विदारक था। शायद इसलिए भी कि उस समय खाड़ी-युद्ध के समाचार दिन-रात रेडियो, टी.वी. पर

प्रसारित हो रहे थे, मानो 'इराक' देश पर प्रलय का-सा कोहराम मचा हुआ था। अमेरिका और ब्रिटेन की सेनाएँ बराबर अति आधुनिक हवाई जहाजों से बमों की वर्षा कर रही थीं, उस एक व्यक्ति को पकड़ने को जो 21वीं सदी के मानवों का 'रावण' से अधिक क्रूर राक्षस बन बैठा, फिर भी उसका संहार न हो सका। इस भयंकर कहर में इराक की सदियों पुरानी धरोहर को कुछ चन्द घंटों में धराशायी कर दिया गया, अपनी लूटी गई अस्मिता को बचाने के लिए कितने नागरिकों ने जीवनदान दिया और बचे हुए ने पागलपन सवार होने पर अपने सुन्दर म्यूजियम को खुद ही तोड़ा-फोड़ा, लूटा और अपने अल्लाह के पास आकर शर्म से मस्तक झुकाकर अपने गुनाह के लिए क्षमा माँगी। विजयी विदेशी सेना ने शवों के ढेर पर अपना झंडा नहीं गाड़ने दिया लेकिन धरती माँ की अपार सम्पदा तेल के कुओं पर अपना पूर्ण अधिकार जमाने के लिए उन्हें ठंडा किया और प्रजातन्त्र को पुनः स्थापित करने के लिए बचे-खुचे स्वाभिमानी नागरिकों को जिनके परिवार के ज़्यादातर सदस्य मर चुके थे, या घायल होकर अस्पतालों में दम तोड़ रहे थे, उनके देश और घर-बार को तितर-बितर कर दिया गया था उन्हें जोड़कर बसाने का उनसे वायदा किया। इराक को पुनः स्थापित करेंगे, क्यों? पहले शरणार्थी बनाओ फिर पुनः स्थापित करो, तानाशाही से मुक्त करने के लिए स्वयं समस्त उस देश की सम्पदा, संस्कृति और मानवीय-मूल्यों को भस्मीभूत कर दो, यह कैसी विडम्बना है इस सदी की? युद्ध की विभीषिका इसलिए थोपी गई कि वहाँ का नागरिक प्रजातन्त्र में रहकर मानवीय अधिकारों को पा सके, यह तो मानवीय अधिकारों का अभूतपूर्व संरक्षण कहलाएगा। कहने को था बहुत कुछ इस समय लेकिन मेरे मन में प्रिय निन्नी के अपराध-बोध की याचना कचोट रही थी, मानव से अधिक सच्चे पशु हैं जो अपनी प्रकृतिवश हिंसा से प्रेरित होकर अपराध करने के बाद उसे दूसरों के समक्ष शब्दजाल को नहीं बिछाते फिरते।

उस बेचारी ने अपनी प्रकृतिवश चौके में (जिस लक्ष्मणरेखा को पार न करने की उसे बचपन से आदत थी) एक जंगली कबूतर को अन्दर आकर उड़ता देख एक शिकारी की तरह उस पर जानलेवा प्रहार कर दिया, पंख टूटे कबूतर को धराशायी करके निन्नी ने उसकी गर्दन या चोंच को उदरस्थ कर लिया होगा, यह अनुमान मात्र है क्योंकि जब यह हादसा हुआ हम लोगों में से कोई सदस्य घर में नहीं था। इस बात का ज्ञान केवल चौके के अन्दर बिखरे पंखों द्वारा किया गया था। शान्ति के दूत कबूतर का अन्त निन्नी द्वारा जो स्वभाव से अत्यन्त शान्त, सुशील एवं शालीन व्यवहार के लिए सुप्रसिद्ध रही थी, अनायास हो गया।

ज्यादातर तो निन्नी अपनी प्रिय कुर्सी में बैठकर सोना पसन्द करती थी, अक्सर

मेरे चौके के पास बाहर खिड़की पर पक्षी-चिरैया, कबूतर आदि पानी पीने आते रहते थे,चौके के अन्दर आने की वह भी धृष्टता नहीं करते थे क्योंकि निन्नी का घर पर सतत पहरा रहता था, शायद उस कबूतर की मृत्यु आ गई थी, वह घर में पूर्ण शान्ति समझकर बेधड़क चौके के भीतर घुस आया, शायद उसके दुस्साहस के लिए क्रोधाग्नि में निन्नी ने उसे धर दबोचा। निन्नी की क्रोधाग्नि इस धृष्टता को सहन न कर सकी होगी, जैसे अमेरिकन जैसी शक्तिशाली प्रजातन्त्र की पक्षधर राजनीति या कहें कूटनीति सद्दाम हुसैन को, खैर छोड़िए इस विषय को। निन्नी भी अपनी प्रिय कुर्सी पर रानी विक्टोरिया की तरह बैठकर अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित रखती थी, इस साम्राज्यवादी आधिपत्य को समझने के लिए निन्नी के व्यक्तित्व को झाँककर देखना अति आवश्यक है।

यदि कोई आगन्तुक बाहर की घंटी बजा देता तब अवश्य तुरन्त उठकर भौंकने लगती और अपने एकान्तवास में खलल डालने के लिए भौंक-भौंककर उसे प्रताड़ित करती, शायद कूकर योनि में जन्म लेने के कारण यह कर्तव्यपरायणता निन्नी की विशेषता न हो। किन्तु घर के बाहर तक की पूरी चौकसी करना, किसी आगन्तुक के हमारी दुमंजिले फ्लैट की प्रथम सीढ़ी पर पग धरते ही अपने लम्बे कानों के एंटिना को उठाकर धीमे से भौंकते हुए अपनी कुर्सी के सिंहासन को छोड़कर दरवाज़े की ओर दौड़ पड़ना निस्सन्देह निन्नी की विशिष्ट घ्राण-शक्ति की विशेषता थी जो कूकर जाति में 'डोबर-मैन' प्रजाति में बहुधा पाई जाती है, इसीलिए डोबर मैन की जाति के कुत्तों को पुलिस में प्रशिक्षण दिया जाता है और इस जाति के कुत्ते सूँघकर अपराधी को पकड़ने में सहायक सिद्ध होते हैं। मैंने निन्नी को कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं दिया था, वह जन्म से ही अपने माँ-बाप से जो सीखकर आई थी, वही मेरे लिए सदैव सराहनीय रहा और उसकी विलक्षण बुद्धि का द्योतक था। मेरे लिए ही क्या, मेरे आस-पास के बड़े-बूढ़े, बच्चे सब ही उसकी बुद्धिमत्ता के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। कई लोगों ने मुझसे आग्रह किया कि मैंने निन्नी को इतनी शालीनता से उठना, बैठना, घर-बाहर के लोगों में कब-कैसा व्यवहार करना आदि कैसे सिखलाया है? माना प्राणी जन्म से अच्छी-बुरी आदतों को लेकर नहीं आता, उसका परिवेश, लालन-पालन, विशेषकर नवजात पिल्ले के छह मास जिस काल में उसके समस्त अवयवों का विकास होता है, उसमें अवश्य हमारे स्नेह और शाकाहारी आहार का योगदान रहा होगा। घर में शान्त वातावरण, शहर की उथल-पुथल से दूर फ्लैट में रहते हुए भी सुन्दर गमलों में खिली हरियाली और फूलों के बीच वह सुबह-शाम बैठकर अपने मालिक को कम्पनी देती आई थी। यदि मालिक ड्राइंग रूम में बैठकर किताब पढ़ता या किसी मेहमान

से बातचीत करता उस समय निन्नी अपनी कुर्सी पर बैठकर सोती रहती। सुबह-शाम नियमित सैर पर जाकर नित्यकर्म करना, उसके बाद मालिक के साथ योग मुद्रा में शान्त बैठे रहना और शाकाहारी भोजन पर रहना, अपने कटोरे में भोजन परोस देने के बाद भी मालिक के आग्रह करने पर ही उसे खाना, निन्नी के व्यक्तित्व की अपनी विशेषता थी। शाम को वह अपना मनोरंजन बच्चों के खेलकूद में सक्रिय योगदान से करती, शायद इसीलिए छोटे बच्चे उन्हें विशेष प्यार से अपने साथ घुमाने के लिए आपस में झगड़ने लगते, खींचातानी से ऊबकर वह कभी भी उन्हें भौंककर डराती नहीं, परेशानी में केवल मेरे साथ-साथ रहने के लिए हठ करती और अपने संयम के बाँध को टूटता देख धम्म से धरती पर बैठ जाती, फिर बालक हठ भी उसे उठा सकने में समर्थ न हो पाता। बगीचे में बेंचों पर बैठी बूढ़ी स्त्रियों के पास जाड़े में घंटों दुपहर की धूप सेंकना और गर्मियों की शामों में ठंडी हवा में हरी घास पर लेटकर उनके साथ-साथ सत्संग का आनन्द लेने के कारण निन्नी का नाम 'सत्संगी कुतिया' बन गया था। मंगलवार को वह अक्सर सुबह और दुपहर का भोजन नहीं करती थी क्योंकि उस दिन उनका मालिक व्रत करता था। बहुत आग्रह करने पर भी वह उस दिन भोजन से भरा कटोरा सूँघकर शान्तचित्त अपनी कुर्सी पर आसन जमाकर बैठ जाती, केवल रात्रि का भोजन अपनी पूर्णरुचि से खाती।

हाँ तो मैंने निन्नी की शालीनता का वर्णन इतने विस्तार से इसलिए किया— परिवेश मात्र से व्यक्तित्व विकास हो जाना कदाचित सम्भव है यदि उस प्राणी की जननिक नियमावली में दोष नहीं हो, जैसा कि मेरा मानना है नैसर्गिक विकास निन्नी का हुआ किन्तु उसकी मृत्यु, कुत्तों जैसे पालतू, स्वामी-भक्त प्राणी जैसी नहीं हुई। इसीलिए यह चर्चा करने के लिए मैं बाध्य हूँ।

चौके में कबूतर को मार देने की बात आई-गई हो गई होती यदि निन्नी के व्यवहार में उस दुर्घटना के बाद अपराध-बोध दिन-पर-दिन एक दारुण व्यथा न बन गया होता। मालिक को निन्नी की झुकी गर्दन, पूँछ आदि के भाव भंगिमा द्वारा पता चल गया कि निन्नी ने कुछ अपराध कर दिया है। चौके को सावित्री (नई नौकरानी) ने आकर तुरन्त साफ कर दिया था और उसने भी निन्नी की मनोदशा देखकर डाँटा नहीं, केवल मालिक को इस बात की सूचना एक दुखद हादसे की तरह से दी। कबूतर के पंख, कटी गर्दन और चोंच रहित शरीर को एक प्लास्टिक के बैग में रख कर सावित्री भी अवाक् थी, "मैंने तो निन्नी को डाँटा भी नहीं कि चौके में घुसकर इसने कबूतर मार डाला है फिर भी यह इतनी अधिक सहमी क्यों है?" इसके बाद से निन्नी ने अपना भोजन त्याग दिया। वह केवल पानी पीती और अपने प्रिय बिस्कुट और रस्क को बहुत आग्रह करने पर खा लेती। ऐसा कैसा

चलता ? पड़ोस के डॉक्टर 'खरब' से परामर्श करके उसे उचित दवा देना शुरू कर दिया गया।

निन्नी की नित्य प्रतिदिन की दिनचर्या पर कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था, केवल वह अपना रुचिकर भोजन-दूध, रोटी, दाल-भात आदि। कटोरे में भरा देखकर वहाँ से तुरन्त लौट पड़ती, बहुत समझाना-बुझाना, आग्रह करना और खीझकर मालिक को उसे डाँटना व्यर्थ जाता। दवा वह मालिक के पिलाने पर ले लेती, और अपने दृढ़ निश्चय पर अडिग रहती कि वह 'संथारा' कर रही है जो मृत्यु को अंगीकार करने की प्रथा है, अपने अपराध का परिमार्जन करने के लिए। यह देखकर उसके मालिक के पास अन्य विकल्प न रहा, केवल शनैः-शनैः प्रभु-इच्छा के प्रति नतमस्तक हो जाना हर प्राणी को अपने-अपने कर्मानुसार जन्म-मरण के चक्र में फँसना पड़ता है लेकिन जो मृत्यु के समीप क्षणों में 'भयातुर' नहीं होते, केवल अपना चोला उसी तरह त्याग देने के लिए तत्पर हो जाते हैं जैसे प्रभु ईसा मसीह ने अपना शरीर क्रास पर लगकर समर्पित कर दिया। उन क्षणों की प्रतीक्षा में जब तक उसकी अन्तिम साँस 'पराशक्ति' की ओर न चल पड़े जिसे हम 'हंसा उड़ गया गगन की खोज' में कहते हैं।

अस्तु, मेरा वैज्ञानिक चित्त निन्नी की उचित देखभाल में लगता गया। किन्तु साथ-ही-साथ हमारी (मेरी और निन्नी की) आध्यात्मिक एकात्मा की खोज निरन्तर चलती रही। सावित्री उसे नित्यकर्म के लिए सुबह-सुबह ले जाने में अधिक सावधानी बरतने लगी, क्योंकि निन्नी की देह भोजन न करने से शिथिल और अशक्त हो रही थी, सदैव की भाँति वह उसके बालों में कंघी करती और आँखों को ठंडे पानी से धोती, इतवार को निन्नी को नहलाने में मैंने भी अपना सहयोग दिया, नहलाने के बाद निन्नी ने कुछ देर तक अपना सिर मेरी गोद में डाल दिया, मानो इस स्नान से उसका मन आश्वस्त हो गया हो। मैं उसकी सुन्दर बड़ी आँखों में एक नई चमक देखकर खुश हुई, लगा कि वह मेरा परोसा हुआ भोजन अब अवश्य खा लेगी, लेकिन मेरे प्रयत्न निष्फल हुए। हारकर मैं डॉक्टर खरब के पास निन्नी को लेकर गई। वह भी सुनकर हैरान थे, उनका कहना था कि मूक प्राणी के अन्दर क्या तकलीफ है, इसका निदान केवल नैदानिक चिकित्सा के लैब टेस्ट की रिपोर्ट के आधार पर ही किया जा सकता है। यही निश्चय हुआ कि निन्नी के खून को निकालकर लैब में भेजा जाए। मैं अन्दर-ही-अन्दर इस कठिन परीक्षण करवाकर निन्नी को भयभीत करने के पक्ष में नहीं थी, लेकिन डॉक्टरी सलाह के विपरीत जाना अपने-आपको हास्यप्रद स्थिति में डालना समझती थी, इसीलिए मैंने कठोर हृदय से निन्नी को इस टेस्ट के लिए तैयार किया। मेरे आग्रह पर डॉ. खरब के पिताजी ने

स्वयं खून निकालकर देने के लिए सोमवार सुबह आठ बजे का समय निर्धारित किया। निन्नी को डॉ. खरब के अस्पताल तक ले जाना अत्यधिक कठिन कार्य बन गया। वह बचपन से ही डॉक्टरों के पास ले जाने में असहयोग आन्दोलन करती थी, क्योंकि मैंने साल भर के भीतर ही उसका ऑपरेशन करवा दिया था जिससे कि वह गर्भधारण न कर सके। निन्नी अपनी माँ की तीसरी बार की गर्भाधान की सन्तान थी, उसकी माँ ने हर बार पाँच पिल्ले जन्म दिए थे। इतने बच्चों का उचित लालन-पालन करने के लिए कुत्ते के मालिक को सर्वाधिक सावधानी बरतनी पड़ती है। कुत्ते का नवजात शिशु बड़ा मनमोहक होता है, हर व्यक्ति उस सुन्दर कुत्ते के बच्चे को देखकर अपनी गोद में बिठाकर दुलराने के लिए लालायित हो जाता, विशेषकर बच्चे तो दिवाने रहते हैं, किन्तु यही पिल्ले जब बड़े हो जाते हैं तब इधर-उधर भटकने लगते हैं। लोगों के पैरों में आकर टकराते हैं और बिरले ही उन्हें अपना बनाकर उनकी उचित देखभाल करते हैं। अतएव मैंने निन्नी जो कि मेरे घर में एक सदस्य की तरह पूर्ण सम्मान से रखी जा रही थी उसकी सन्तान की कोई अवहेलना करे, इस आशंका से उसे मातृत्व भार से मुक्त कराने के लिए मुझे उसका नसबन्दी का ऑपरेशन करवाना पड़ा, नैसर्गिक क्रिया में व्यवधान डालने से निन्नी को कई फायदे अवश्य हुए लेकिन कई नुकसान भी, जिनकी चर्चा यहाँ करना अब व्यर्थ है। निन्नी बेचारी को जीवनपर्यन्त डॉक्टरों से नफ़रत थी, वह उनको देखते ही अपना आक्रोश भूकने से करती और कुत्तों के अस्पताल के आस-पास भी जाना नहीं पसन्द करती थी। यहाँ तक कि मुझे उसकी एन्टीरैबिक इंजेक्शन (एक प्रकार का टीका) लगवाने के लिए डॉक्टरों को अपने घर या पास के किसी बगीचे में आकर लगवाने का आग्रह करना पड़ता, ऐसा हर साल का प्रबन्ध निन्नी का सौभाग्य था जो उसे मृत्यु तक कुत्तों के डॉक्टरों की विशेष अनुकम्पा से प्राप्त होता रहा। यहाँ मेरा अपना अनुभव डॉक्टरों के व्यवसाय के प्रति स्निग्धताओं से ओत-प्रोत है क्योंकि इस व्यवसाय में वही उन्नति कर पाता है जो अपने कार्य क्षेत्र का मर्मज्ञ ही नहीं अपितु सहृदयी और अत्यधिक कोमल भावनाओं को समझ और परख सकने की क्षमता रखता है, जानवरों के डॉक्टरों में यह गुण होना अति आवश्यक है। निन्नी के स्वभाव को उसका मालिक और उसके डॉक्टरों ने समझा, उसकी आँखों में, घ्राण शक्ति में कहने-सुनने की शक्ति वाणी से अधिक थी लेकिन हम दोनों क्या कर सकते थे, खून की जाँच करवाए बिना यह पता करना असम्भव हो गया था कि वह क्यों खाती नहीं है? निन्नी का मुँह बन्द करके उसे टेबिल पर लिटा कर उसकी एड़ी से खून निकालने में कई बार नीडल (सूई) चुभोनी पड़ी क्योंकि खून की कमी के कारण नस मिलने में देर लगी थी। किसी तरह यह कार्य सम्पन्न हुआ, दो शीशियों में खून

को सीलबन्द करके जाँच के लिए भेजा गया। कई तरह के टेस्ट डॉक्टरों ने लिखे थे, विशेषकर लीवर (जिगर) और खून की पूरी जाँच जिसका प्रबन्ध आम डॉक्टरी लैबों में होना असम्भव था। खून को निकलवाना जितना असम्भव कार्य बन गया था उतना ही उसका उचित निदान, जहाँ भी भेजो, पता चलता कि वहाँ कुत्ते के खून की जाँच होना असम्भव है क्योंकि इंफेक्शन (संक्रमण) हो जाने का डर होता है। मुझे भी निन्नी को डॉक्टर के पास ले जाकर खून निकलवाने में यही पशोपेश था।

निन्नी डॉक्टर के यहाँ से लौटते समय मानो नई स्फूर्ति से भर गई हो, उसने रास्ते में दो बिस्कुट चाव से खाए और घर आकर पानी पीकर सो गई। मैं भी खून की जाँच करवाने के चक्करों में फँस जाने के कारण इधर-उधर दौड़ती रही, लेकिन दोपहर के बाद से निन्नी की हालत में बाढ़ की तरह रोग का प्रकोप बढ़ने लगा, उसे कै होने लगी। मैं लगातार उसके मुँह पर कटोरे को लगा वमन को भरकर फेंकने लगी और उसे तुरन्त नमक और चीनी मिला घोल पिलाने लगी। खून की जाँच आने में करीब चौबीस घंटे लगे, तब तक निन्नी काफी अशक्त हो गई। इधर उस बेचारी ने अन्न के नाम पर दो बिस्कुट ही खाए थे, वह भी डॉक्टर की खून की जाँच से अत्यधिक भयभीत स्थिति से उबर पाने के लिए, लेकिन उसके शरीर में मानो जहरबाद फैल गया हो दो बिस्कुटों का।

लीवर टेस्ट में तथा अन्य खून की जाँच के अनुसार डॉ. खरब, उनकी पत्नी एवं पिता (जो तीनों ही कुशल जानवरों के डॉक्टर हैं) ने परामर्श करके कई दवाएँ देने की सलाह दी, लेकिन उनका कहना था कि उन दवाओं को इंजेक्शन से नसों द्वारा दिया जाए तब लाभ होने की अधिक आशा है। लेकिन निन्नी के खून में हीमोग्लोबीन (रक्त कोश) की मात्रा अत्यधिक कम थी और उसकी नस मिलने में कई जगह सूई चुभाई जाती। भाग्यवश निन्नी के लिए डॉक्टरों की तत्परता से लिखी गई सभी दवाएँ मनु (मेरे मित्र का पुत्र) को उपलब्ध हो गईं। अतएव मैंने पूर्ण निष्ठा से एक शिशु को जैसे दवाई पिलाई जाती है, वैसी नियमितता के साथ निन्नी को दवा पिलाना शुरू कर दिया। और उनका तत्कालिक प्रभाव दिखने लगा, विशेषकर वमन आना बन्द हो गया और निन्नी में नई स्फूर्ति आ गई, लेकिन वह कुछ भी खाने को तैयार न थी, केवल समय-समय पर उसके मुँह में डाली गई दवाइयों के अलावा। मैंने चाहा कि दवाइयों की तरह मैं कुछ दूध उसे पिला दूँ लेकिन वह सब उसे निकालकर फेंक दिया, फिर दवा क्यों नहीं?

उस दिन भर की सेवा का प्रतिफल था कि निन्नी अपनी प्रिय गलीचे पर लोट-पोट लगाकर शान्ति के साथ सो सकी। दूसरे दिन भी सुबह से दिन के 12 बजे तक निन्नी की तबीयत में ठहराव रहा लेकिन उसे फिर से कै आने लगी जिसके कुप्रभाव

से अब दवा भी बाहर आने लगी, उसकी गिरती हालत अब डॉक्टरों की समझ से परे थी। मैं भी शान्त चित्त से उसके पास बैठी रही मानो हम दोनों के बीच न तो इराक की युद्ध की विभीषिका का आतंक था, न मानव अधिकार के हनन हो जाने की समस्या, न ही किसी आर्थिक शक्तिशाली साम्राज्य की दोहरी नीति का पर्दा गिरा देने की नई योजना, वहाँ तो केवल चिरशान्ति की खोज थी। निन्नी की साँस प्रति साँस में मेरे हृदय के स्पन्दन हिलोरे ले रहे थे, मुझे केवल अपना ध्यान ईश्वर अराधना में लगाने की ओर प्रेरित कर रहा था। मेरे घर की घड़ी ने एकाएक चलना बन्द कर दिया, टेलीफोन भी अनायास लाइन के कट जाने से डेड (निष्क्रिय) पड़ा था, कल रात दो बिजली के बल्ब फ्यूज हो चुके थे, शनैः-शनैः घर के वातावरण में सूनापन व्याप्त हो रहा था।

शाम को आता देख मैंने चाहा कि निन्नी को नित्यकर्म की उसकी आदत अनुसार एक बार बाहर ले जाकर उसे पेशाब या मल आदि से निवृत्त करवा दिया जाए। सावित्री के पति और देवर दोनों ने आकर उसे गोद में ले जाकर निवृत्त करवाया, उसको अब खड़ा होने में विशेष कष्ट हो रहा था, उसकी याचकता भरी आँखों में केवल मेरे लिए जो सहृदयी भाव था उसकी अनुभूति शब्दातीत है, ऊपर आकर हम लोगों ने निन्नी को उसकी पसन्द के गमलों जो फूलों से भरे हुए थे(मार्च का महीना होने के कारण) लिटा दिया। मैंने पास में बैठकर उसके मुँह में तुलसीदल और जल डाल दिया और रामायण खोलकर पढ़ने लगी, प्रसंग भी अनायास विशिष्ट निकला, भरत जी लौट कर आए हैं, दशरथ जी का स्वर्गवास हो गया है, वह माता कौशल्या के भवन में पधार कर अपने को धिक्कार रहे हैं, उन्हें समझाया जा रहा है कि 'हानि-लाभ जीवन मरण सब विधि के हाथ', एकाएक मेरे फ्लैट की घंटी बजी, जिसे सुनकर कर्तव्य-परायण निन्नी ने मुझे सजेत किया और तुरन्त लुढ़कती हुई ड्राइंग रूम की तरफ भागी, जैसे वह ठीक है अब मैं उनकी सुधबुध भूलकर आगन्तुक को देखूँ।

दरवाजे को खोलते ही मैंने नमिता (मेरी पड़ोसिन) को निन्नी की चिन्ता से घबड़ाया हुआ पाया, उसे आश्वस्त करते हुए मैंने पूछा ''तुम्हें कैसे पता चला कि निन्नी बहुत बीमार है?''

''आपको अलका कब से फोन कर रही है, उसी ने बतलाया, कि निन्नी बेहद बीमार चल रही है। क्या आपका टेलीफोन खराब है?''

''यह दोपहर से डेड है। आखिरी बार डॉ. खरब का फोन आया था, उस समय तो उनकी दवा से निन्नी की हालत सुधार पर थी।''

''लेकिन आपने उन्हें दुबारा गिरती हालत के बारे में बतलाया है कि नहीं?''

''कैसे बतलाऊँ, टेलीफोन भी डेड है और ऐसे समय मैं निन्नी को अकेले नहीं छोड़ सकती।''

''लेकिन हमें डॉक्टर को तुरन्त बुलाना चाहिए, इतना मेरा निन्नी के प्रति कर देना ऋण है, मैं डॉक्टर को यहाँ ले आती हूँ।'' यह कहकर नमिता जाने को तत्पर हो गई। जाते-जाते मुझे आश्वासन दे गई कि यदि उसकी कोई जरूरत पड़े तो मुझे अवश्य बुलवा लें। नमिता के जाने के बाद निन्नी और मेरा सन्निधि और अधिक भाव-विभोर होने लगा जैसे हम एक-दूसरे से विदा ले रहे हों, मैंने निन्नी को दुलराते हुए अपने आगोश में ले लिया, उसने जीवन-पर्यन्त मेरी चहारदीवारी को गुंजित किया था, रक्षा की थी, स्नेहगन्ध में रखा था। उसका वात्सल्य भरा प्रेम, भक्ति की सी अगाध भावना, उस अटूट अलौकिक सम्बन्धों की लड़ी टूटकर बिखरने वाली थी, जिसे केवल वही समझ पा सकता है जिसने प्राणी के सच्चे स्नेह से अपने-आपको ओतप्रोत किया हो। निन्नी के जीवन का अन्त अति दुखदायी मालिक के लिए अवश्य था किन्तु उससे भी अधिक सुखदायी मृत्यु की भयानकता को दूर कर देने वाला एक आध्यात्मिक अनुभव। निन्नी जिसका नाम 'मृगनयनी' उसकी सुन्दर आँखों को देखकर रखा गया था, शनैः-शनैः वह ज्योतिहीन हुई अपने पार्थिव शरीर को पंचतत्त्वों को समर्पित कर देने के लिए मानो लालायित थी, ऐसे ही कठिन क्षणों में डॉ. खरब, अपने पिता और कम्पाउंडर के साथ सलाइन (घोल), नसों द्वारा दवाएँ चढ़ाने के सारे उपकरण लेकर उपस्थित थे, इस बार घंटी बजी फिर भी निन्नी में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई मानो उसे लगा कि यमराज आ गये हों।

मैंने डॉक्टरों का स्वागत करते हुए कहा, डॉक्टर साहब लगता है उसको अब यह सब देना इसको यातना देना होगा।''दोनों डॉक्टरों ने परामर्श किया, कम्पाउंडर ने निन्नी का ताप लेने के लिए थर्मामीटर (तापमान यन्त्र) जब लगाया तब भी निन्नी ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। उस समय का ताप साधारण निकला और मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए वरिष्ठ डॉ. खरब ने कहा, ''हम तो पूरी तैयारी से आए हैं, लेकिन इसका हीमोग्लोबिन इतना कम है कि शायद यह उपचार भी काम न आ सके, चलो रात भर देख लेते हैं, कल सुबह आकर जो उचित होगा वही करेंगे, लेकिन क्या दवाई देने के बाद इसने कुछ खाया? आपका तो कहना था कि दवाएँ फायदा कर रही हैं, कै बन्द हो गई है।''

''हाँ, मुझे भी आपकी दवाओं के देने से उम्मीद थी यह ठीक हो जाएगी किन्तु डॉक्टर साहब आपके अच्छे उपचार के बावजूद इसने खाना नहीं खाया। शुरू-शुरू में यह बिस्कुट खाती थी, लेकिन वह भी छोड़ दिए। गत 25 दिनों से यह बिल्कुल उपवास-सा कर रही है, जब से उसने कबूतर को मार दिया, लगता है उसी के कुछ

भाग ने इसके जिगर में नुकसान कर दिया है।''

मुझे आश्वस्त करते हुए डॉक्टर ने कहा, ''अरे, कुत्ते ऐसा कुछ खाते रहते हैं उससे ऐसा हो जाना सम्भव नहीं है।''

''किन्तु मैंने इसे कब कुत्तों की तरह जीने दिया, खान-पान, रहन-सहन सब तो इसकी हिंसक प्रवृत्ति के विरुद्ध था।'' डॉक्टरों के पास भी इस कथन का तर्कसंगत उत्तर न रहा, उन्हें विदा करके जब मैं निन्नी के पास बैठी, तब वह धीरे-धीरे भौंकने लगी, उसे उनका आना बिल्कुल पसन्द नहीं आया था, मैंने उसे आश्वस्त किया, ''नहीं निन्नी, तुमको अब कोई नहीं सताएगा'', कहकर मैंने उसका पट्टा भी खोल दिया जिससे उसे साँस लेने में कोई भी कठिनाई न हो। मेरे पास अपने चित्त को स्थिर रखने के लिए प्रभु की शरणागति में जाने के अतिरिक्त कुछ शेष न था।

निन्नी का पार्थिव शरीर रात्रि के पहले पहर में ठंडा पड़ गया। मैंने, नमिता और सावित्री के परिवार के पुरुष वर्ग ने बाबा गंगनाथ मन्दिर के सामने के जंगल में जाकर बड़ा गड्ढा खोद कर सुला दिया, वहीं मेरे पहले कुत्ते बन्नी का अन्तिम संस्कार किया गया था। मृत्यु मेरे दोनों कुत्तों की लम्बी आयु जीकर हुई थी, दोनों ने 'संथारा' करके देहावसान किया, दोनों मेरे लिए हिंसक पालतू पशु की श्रेणी में कदापि नहीं थे। मृत्यु के समय दोनों ने मुझे जो शिक्षा अपनी मृत्यु को शान्तचित्त रूप से अंगीकार करने की दी है, वह उन्हें मेरी श्रद्धांजलि है और प्रभु से मृत्यु के समय उनकी-सी शरणागति हो जाने की अपनी याचना।

❑

अन्ततः

आदिकाल से नारी की अनेक साहित्यों में उसके रूप और भूमिकाओं को लेकर चर्चा होती रही है, शायद और होती रहेगी। लेकिन प्रेम-प्रसंगों में विशेषकर इश्क के मामले में उसे हृदयहीन तक कह दिया गया है, वह बेवफा है, पुरुष के लिए मायाजाल है और न जाने कितने नकारात्मक शब्दों में वर्णित की गई है। पुरुषों ने माना उसके कारण युद्ध किए हैं, उसके सौन्दर्य से अविभूत होकर ग्रन्थ रच डाले, तूलिका से कितने चित्र बना डाले। जीवन भर उसकी गुलामी करने के लिए प्रण किए हैं, किन्तु नारी आज तक एक पहेली बनी रही है। प्रकृति की इस अनोखी छवि जो नयनों से अलसाये अनुराग बिखेरती, गोलमटोल-सी, रस भरी, खट्टी-मीठी, दाँतों तले क्यों मसली जाती है? विनीता के किशोर मन में महाकवि कालिदास रचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक को पढ़ते हुए पुरुष पात्र प्रेमी दुष्यन्त के प्रति विद्रोह की चिनगारी कब सुलग गई, उसे पता नहीं चला। आधुनिक युग की नारी होने के कारण संस्कृत साहित्य में एम.ए. न करके उसने राजनीतिशास्त्र में एम.ए. कर, सिविल सर्विस की तैयारी करना उचित समझा।

पढ़ने में मेधावी होने के कारण विनीता पहली बार में ही सिविल सेवा में उत्तीर्ण रही और अपनी ट्रेनिंग के लिए आ गई। वहाँ अपने आत्मविश्वास एवं नारी के समान अधिकारों से प्रेरित होने के कारण पुरुष वर्ग के लिए मानो वह विकराल प्रलय-सी खटकने लगी। उसकी प्रचंड संवेदनाओं में आहुति देने के लिए अनेक सहकर्मी छात्र थे किन्तु उसकी नारी-जनित कोमल भावनाओं को मौन धरा पर विलोड़न करती, सृष्टि के फैलाव को निहारने वाला प्रेमी न था। विनीता अपनी कैरियर की सफलता से गौरवान्वित थी। उसे रोमांस के प्रति लगाव न था, जीवन कैलेन्डर वर्ष के पन्नों की तरह घूम रहा था। आजीविका सुरक्षित होने के बाद, सरकारी कर्मचारी को अपने पद के साथ वह सब कुछ अनायास मिल जाता है जो रजवाड़ों में राजदरबारियों को सुलभ होता रहा होगा। ये सब कुछ हासिल हो जाने के बाद विनीता जैसी आधुनिक नारी हाथ-पर-हाथ धरे कैसे बैठी रहती? हो सकता है सुगन्धित खिले फूल को देखकर भौंरे की तरह विजय मोहन की, जो उसके

वरिष्ठ प्रशासन-ग्रेड में थे, चारों ओर मँडराने की संवेदनाएँ जाग उठीं, जिसे इश्क कहा जाएगा, एकतरफा जीवन के मध्यान्तर में।

विनीता का ध्यान विजय मोहन के उच्च पद से अधिक उसकी व्यवहार कुशलता, विशेषकर सबको अपना बनाकर रखने की क्षमता के प्रति नतमस्तक था, दोनों में मेल-मिलाप सरकारी कामकाज, पार्टी, घर में आने-जाने के सिलसिले से बढ़कर अकेले में आमोद-प्रमोद में परिवर्तित होता गया, लेकिन नारी के समान अधिकारों के प्रति कटिबद्ध होने के कारण विनीता ने पुरुष-नारी सम्बन्धों के बीच लक्ष्मण रेखा को बनाए रखा। उसके लिए इश्क क्या, कोई भी बलिदान वह हँसते-हँसते करने में सक्षम थी। अनायास एक दिन विजय मोहन ने धृष्टता में विनीता को ललकारा।

''तुम्हें जीतने के लिए लगता है किसी उच्चकोटि के फौज़ी अफ़सर को तुम्हारे सामने लाना पड़ेगा?''

''आपको यह बात कैसे सूझी, सुनकर मैं तो ...''

''नहीं, नहीं, ये बात मेरी ओर से नहीं उठी है। मेरी पत्नी कह रही थी कि विनीता को शादी कर लेनी चाहिए, किसी अच्छे वर की खोज-खबर क्यों नहीं लेते आप? आपको बहुत मानती है, फिर आपके मित्रवर्ग में काफी लोगों के सम्पर्क रहते हैं, यह काम आसानी से किया जा सकता है। दोनों की जान-पहचान करवा दें, फिर देखिए ...''

विजय मोहन को रोककर विनीता ने नाराजगी व्यक्त करने के लिए कहा, ''नहीं, मुझे शादी करके अपनी ऊर्जा को पति और घर-गृहस्थी में सीमित नहीं कर देना है। पुरुषों के लिए दोनों भूमिकाएँ निभाना सरल होता है। वह उच्च पदाधिकारी होते हुए भी घर जाकर चैन की साँस ले सकता है। पैर फैलाकर अपनी पत्नी और बच्चों पर वर्चस्व रखता है, उनके सहारे से चैन की बंसी बजाता है, लेकिन वही उच्च पदाधिकारी पत्नी घर जाकर क्या वैसे ही तनावमुक्त हो सकती है? उसे तो पत्नी, माँ, मालकिन की भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं, जिसे आजकल Multi Tasking कहते हैं — यानी 'विभिन्न कार्य-कलापों का वहन।' ये जवाब देकर विनीता ने नारी-पुरुष Roles (भूमिका) के बीच के दुर्व्यवहार के प्रति विजय मोहन की प्रतिक्रिया जाननी चाही।

विजय मोहन कुशल पदाधिकारी ही नहीं, संवेदनशील मार्गदर्शक एवं अनुभवी शुभचिन्तक होने के कारण विनीता को प्रेम से अपने पास बिठाकर समझाने लगे, ''अरे, तुम्हें कौन गृहस्थी करने को कहेगा। घर जाकर जैसे आजकल तुम अकेले बैठकर सारी सुख-सुविधाएँ नौकरों द्वारा लेती हो वैसे ही तुम्हें मिलती रहेंगी। ऊपर

से पत्नी-पति का प्रेम, साहचर्य, बोनस में, जिसकी कमी क्या तुम्हें नहीं अखरती?" कहते हुए विजय मोहन ने पहली बार विनीता को अंक में भर लिया। गलत जगह पर पैर पड़ने जैसा अहसास हो जाने के करण विनीता ने अपने को बन्धन मुक्त किया, उसके गोरे गालों पर गर्म रक्त आकर झलकने लगा। कुछ पसीने की बूँदें भी चमक उठीं, "मुझे आपसे ..." शब्द तरकस से निकले बाण की तरह लक्ष्य भेदकर तत्परता से लौट पड़े। वह लहूलुहान स्वयं हो गई, पता नहीं क्यों, शायद यही नारी होने की विडम्बना है।

विजय मोहन के लिए विनीता का व्यवहार परिवर्तन उसकी समझ से परे था, घर आकर उसने शादी के विषय में विनीता की प्रतिक्रिया पूर्णरूप से अपनी पत्नी को बतला दी। पत्नी ने आग्रह किया कि वह भविष्य में विनीता से इस विषय में पहल कदापि न करे। नारीसुलभ आशंका से पत्नी का माथा ठनका, कहीं उन्होंने कुछ शरारत तो नहीं की है? क्योंकि कुछ दिनों तक विनीता का घर में आना-जाना बन्द हो गया, यहाँ तक कि होली के त्यौहार पर वह होली मिलन के लिए भी नहीं आई। केवल औपचारिकता में एक Greeting Card (बधाई सन्देश) पति-पत्नी के नाम से भिजवा दिया।

विजय मोहन अपनी अवहेलना को सहन न कर सके। एक अधीनस्थ महिला अफसर अपने-आपको क्या समझ बैठी है? इतनी लिफ्ट (ऊँचाई) किसी को नहीं देनी चाहिए। मन-ही-मन अच्छा सबक सिखाने के वह तानेबाने बनाने लगे। जीवन में वरदहस्त रखकर अपनी छत्रछाया देने की क्षमता होने के कारण विजय मोहन विनीता की नारी-सुलभ 'सुतली की तरह जो हर बट पर कटकर झर जाती है' स्वभाव को समझने में असमर्थ थे। अचानक किसी सरकारी दौरे पर दोनों का टकराव होने पर विजय मोहन ने एक कुशल शिकारी की तरह विनीता पर अपना जाल बिछा दिया। विनीता एक घायल हिरनी की तरह बचाव न कर सकी। उस समय माननीया प्रिया को अपने अधिकार, कर्तव्य, पद, प्रतिष्ठा किसी की चिन्ता न रही, वह विजय मोहन से सुनना चाहती थी कि वह उस दिन के बाद से पीछे लौटकर क्यों नहीं आए? क्यों नहीं होली जैसे त्यौहार पर रंग लगाने आए? उस दिन तो दुश्मन को भी गले लगा लिया जाता है, इस परिवार से उसका कितना आत्मिक सम्बन्ध बन गया था, क्या वह एकाएक तोड़ा जा सकता है?

विजय मोहन अपनी पत्नी की आशंकाओं से परिचित था, वह विनीता से एकाएक सम्बन्ध विच्छेद रखने में अपनी कुशलता समझने पर भी, अपने वर्चस्व पर आघात सहन नहीं कर सकता था। वह विनीता को प्रताड़ित करके ही चैन की साँस लेना चाहता था। अन्ततः दोनों के Ego Clash (अहम् पर चोट) होना मानो भाग्य की परिणति बन गया।

विनीता ने Subordinate Officer (अधीनस्थ अफसर) की भूमिका निभाते हुए निवेदन किया, "बहुत दिनों से आपसे भेंट नहीं हो सकी, माफ कीजिएगा, आप लोगों के क्या हालचाल हैं? सुनते हैं आज Big shot (बड़ा लक्ष्य भेदक) बन गए हैं, सबसे बड़े उच्चतम ओहदे पर चले गए हैं।"

विजय मोहन ने हँसते हुए जवाब दिया, "हाँ, हमलोग ठीक-ठाक हैं तो आपको भी मेरे Promotion (तरक्की) की खबर है। मैं Small shot (छोटा लक्ष्य भेदक) कब था?"

"मुझे आपको बधाई देने के लिए स्वयं उपस्थिति में आना चाहिए था, शायद आपको पता हो मैं काफी दिनों से अपने Promotion by seniority (चयन द्वारा पदोन्नति) के चक्कर में पड़ी रही, मेरा Promoter (प्रवर्तक) ..."

"बस, मेरा मुँह न खुलवाओ तो अच्छा है, तुम तो अपने कन्धे पर अपने किसी हितैषी का हाथ रखना भी पसन्द नहीं करती, शायद तुम्हें Sexual harassment complex (यौन उत्पीड़न की मनोग्रन्थि) है।"

"आप सर, एक मनोचिकित्सक की तरह क्यों मुझे झकझोर रहे हैं? मेरी खिंचाई करने के अलावा आप मेरा बहुत कुछ कर सकते हैं?"

"अरे, क्या चाहती हो, खुलकर कहो तो सही।"

"मेरी फाइल Promotion के Process में कहाँ और क्यों अटककर रह गई है, जरा पता कीजिए।" विनीता ने पुराने अधिकारपूर्वक प्रेम से कहा।

सुनते ही विजय मोहन की विनीता को प्रताड़ित करने की नकारात्मक सोच पुराने Attachment (आसक्ति) केन्द्र से आकर जुड़ गई जिसे आम भाषा में 'इश्क' या Chemistry (रसायन) मिलन कहते हैं। पुरानी शराब को नए पात्र में पीने का मोह उसे सताने लगा। उसने तत्परता से फाइल को ढूँढ़ लेने का वायदा किया लेकिन एक नए अनुबन्ध के साथ 'विश्वास से अच्छा कुछ नहीं होता, घोर अन्धकार में भोर होने की पहली किरण विश्वास से दिखने लगती है, सन्दिग्ध व्यक्ति ईश्वर प्रेम क्या, मनुष्यों के प्रेम से भी वंचित रहता है।' विजय मोहन ने तर्क दिया।

विनीता का तार्किक पक्ष इस अनुबन्ध को सहज रूप से अंगीकार कर सका। उसे पता था कि सरकारी कार्यतन्त्र में बिना God father (पक्षधर) मार्गदर्शक बनाए केवल निजी कार्यकुशलता से बड़ी Post (पद) नहीं मिलती है। कुछ समय के अन्तराल में विनीता की पदोन्नति ही नहीं, मनमानी पोस्टिंग भी मिल गई, जहाँ जाकर उसने सुव्यवस्थित होते ही विजय मोहन को स्वागत भोज में शामिल होने का आग्रह किया। उसने अनुमान नहीं किया था कि विजय मोहन इतनी जल्दी सरकारी कामकाज बनाकर उसके निमन्त्रण पर अकेले आ जाएँगे। भोजन का आयोजन सबसे

बड़े होटल में किया गया था। उस शहर के कुछ सम्भ्रान्त नागरिक एवं वरिष्ठ अफसरजनों ने शामिल होकर श्री विजय मोहन को विनीता जैसी कुशल अफसर का God Father ही नहीं, अभिन्न पुरुषमित्र मान लिया जिसके कारण कानाफूसी होना स्वाभाविक ही था। विनीता नई जगत में अपने को सुरक्षित करने के चक्कर में खुलकर ऐसी Rumour (उड़ती खबरों) का खंडन न कर सकी। विजय मोहन के लिए ऐसे सामाजिक वातावरण में विनीता से भेंट करते समय अपनी पत्नी को साथ में ले जाने में अटपटा लगा, वैसे भी विनीता का उसके परिवार से सम्पर्क टूट चुका था, पत्नी ने विजय मोहन को भविष्य में अविवाहित अधीनस्थ महिला अफ़सरों से दूर से नमस्कार करने की Warning (चेतावनी) दे रखी थी।

नए स्वतन्त्र वातावरण में विनीता और विजय मोहन के सम्बन्ध घनिष्ठ होते गए। दोनों अपने-अपने कार्यक्षेत्र में अतिव्यस्त होते हुए भी एक-दूसरे से मिलने-जुलने के प्रोग्राम बना लेते, दोनों अपने इस मधुर साहचर्य से विश्वस्त थे, उन्हें कोई रिश्ते का नाम देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी। समय के अन्तराल में विनीता का किशोर नारी हृदय सतत प्रेमी पुरुष की संगति में यौवन की चरम सीमा को पार करके मातृत्व की अचेतन ललक से बात-बात में विजय मोहन से खिन्नचित्त होने लगा। विजय मोहन विवाहित होने के कारण विनीता के इस बदलाव को Spinster (कुमारीपन) के Mood Swing (मूड में बदलाव) कहकर टाल देता, क्योंकि उसे पता था कि वह दोनों सरकारी नौकरी में रहते हुए अपने सम्बन्धों को कानूनी रूप से नाम नहीं दे सकते। यह बात विनीता भलीभाँति जानकर भी न जानने का स्वाँग क्यों करती है? एक दिन आपसी बहस के बीच विजय मोहन ने तल्खी भरे कड़े शब्दों में कहा, "तुम्हें मेरे से क्या और अधिक चाहिए, मेरी मौत के बाद मेरी खाक भी तुम्हारी होगी।" ये सुनते ही विनीता रो पड़ी, "मुझे आपकी खाक नहीं चाहिए, मुझे आप पर क्या, आपके पूरे जीवन पर अधिकार चाहिए, मेरी अर्थी भी आपके कन्धों पर उठकर श्मशान तक जाए, ये वायदा करो, नहीं तो मुझे अकेले छोड़कर अपनी पत्नी के साथ सुखी रहो।"

"सब कुछ जानकर भी नादानों की तरह क्यों बातें करने लगी हो। क्या एक पुरुष एक साथ दो नारियों को समान रूप से प्यार नहीं कर सकता, जैसा मान मैं तुम दोनों को देता आया हूँ।"

"नहीं, कदापि नहीं, आपकी पत्नी किसी भी कीमत पर अपने पति को दो स्त्रियों के साथ नहीं स्वीकार करेंगी। मुझ जैसी बेवकूफ महिला ही ऐसी स्थिति में अपने को डाल सकती है।"

"खैर, जब इश्क हो जाता है तब ये सब बेवकूफियाँ होती हैं। तुम जितनी

Foolish (बेवकूफ) हो उतना मैं भी हूँ, चलो उठो यह सब व्यर्थ की बातों में दिमाग लगाकर उलझने से अच्छा है, इसी पल में जियो, अपने-आपको मधुरता के रस में डुबाए रखो।'' कहकर विजय मोहन ने विनीता को समझाया-बुझाया।

विनीता का अधेड़ शरीर युगल प्रेमी संवादों से उठकर सांसारिक ठोस धरातल पर आ गया था, वह खीजकर बोल पड़ी, ''आज के युग से तो पुराने काल के सम्बन्धों में ज़्यादा ईमानदारी थी। गन्धर्व विवाह करके दुष्यन्त शकुन्तला को ऋषि दुर्वासा के शापवश भूल गया था, लेकिन शापमुक्त होते ही वह शकुन्तला को खोजने निकल पड़ा, उनकी सन्तान भरत को पूरा मान दिया गया है, हम सब उसी भरत के वंशज ही तो हैं।''

''तो क्या ... ?'' कहकर विजय मोहन चुप निरुत्तर था। ऐसे बिन्दु पर आकर जहाँ उर की धड़कन-सी, निशेष जनित मौन बनी धरा पर विलोड़न करती सृष्टि के फैलाव-सी, क्या विनीता आधुनिक युग की नारी है?

इस कटुता भरे सम्वाद का परिशिष्ट बतलाना अति आवश्यक है। विजय मोहन विनीता के जीवन से उसी तरह अदृश्य हो गए जैसे खरगोश के सिर पर से सींग। वह अपनी पत्नी सहित विदेश के उच्च्व कार्यभार में संलग्न रहे, इधर विनीता खंडित नायिका की भाँति उनकी राह को ताकती रही कि श्रीमान्‌जी का मौन कब टूटेगा, वह कब आकर उसका मान-सम्मान जो कि एक प्रिया होने के नाते उसका अधिकार है, देंगे।

किन्तु अचानक उसे सरकारी सूत्रों से पता चला कि विजय मोहन का विदेश में हृदय गति रुक जाने से देहान्त हो गया है। उसकी पत्नी ने विनीता को इस हृदय-विदारक मृत्यु की सूचना तक नहीं दी। दु:खद सूचना मिलते ही विनीता ने हृदय पर पत्थर रखकर सब कुछ चुपचाप आत्मसात् करना उचित समझा। इस जन्म में वह मानो ठगी गई है, किन्तु अगले जन्म में ऐसी गलती कदापि नहीं करेगी। विजय मोहन को वह क्षमा कर सकती है, शायद क्षमा भी कर दिया है। अन्तत: मानव जीवन में प्रेम का आन्तरिक भाव जग जाने से प्रतिकार की नकारात्मक सोच धूमिल पड़ जाती है जो एक नारी सहज कर सकती है।

❑

मेल-मिलाप बनाम रैगिंग

शब्दों के अर्थ व्याकरण से परे, प्रयोग करनेवालों की बोलचाल पर निर्धारित होने के कारण बदलते रहते हैं। स्कूल में उसका नाम 'प्रवीण' होने के कारण, विशेषकर टीचर द्वारा मेधावी छात्र होने के कारण 'यथा नाम तथो गुण:' में जाना जाता था, लेकिन वह अपने सहयोगी छात्रों में 'किताबी कीड़ा' लेकिन प्रवीण को पता नहीं चल पाया कि वह कब 'प्रवीण' से 'के-के' बन गया है, उसने अपनी पहचान मित्रों, सहयोगी छात्रों से ऊँची रखने में 'एड़ी चोटी' का प्रयत्न नहीं किया था। पढ़ने को उसने अपनी नित्य क्रम की क्रिया समझकर उत्साहपूर्वक ग्रहण किया, टीचरों ने भी उसे अतिबुद्धिमान समझकर उसके उत्साह को बढ़ावा दिया। कठिन-से-कठिन प्रश्नों का उत्तर दे देना उसके लिए सहज प्रक्रिया थी, बचपन में उसे और कोई विशेष रुचि या रुचिक्रम (Hobby) नहीं था, हर कक्षा में कूदकर (Hob) वह कक्षा XII में अपने राज्य में सर्वोत्तम प्रथम श्रेणी घोषित हुआ। साइंस एवं गणित में उसे विशिष्ट यानी 75% से भी अधिक नम्बर मिले थे। अपनी मेधावी शक्ति से उसे मेडिकल के विशिष्ट कई कॉलेजों में परीक्षा द्वारा दाखिला मिल गया। यह समाचार उसकी माँ के लिए अति सुखद था जिसका वर्णन शब्दों में करना व्यर्थ है।

प्रवीण की माँ एक नर्स थी जो मध्यवर्गीय परिवार में एक साधारण क्लर्क की पत्नी होने के कारण अपने मेधावी पुत्र को उच्च मेडिकल की शिक्षा देने के स्वप्न सँजोती रही थी, उसे पता था कि केवल मेडिकल में एम.बी.बी.एस. करने मात्र से काम नहीं चलता, यदि प्रवीण को उच्च योग्यता का डॉक्टर बनवाना है तो उसे एम.डी., फिर विदेश जाकर किसी विशिष्ट मेडिकल क्षेत्र में योग्यता प्राप्त करना अनिवार्य होगा, यह सब कैसे सम्भव है? उसके पास इतनी लम्बी पढ़ाई के पैसे कहाँ से आएँगे, फिर पति को वह कैसे राज़ी करे कि वह अपनी प्यारी बेटी 'श्यामा' जो जन्म से बहरी होने के कारण गूँगी है, उसे घर बिठाए रखे? उसका विवाह करना कैसे सम्भव होगा? घर की सारी कमाई जोड़कर भी 'प्रवीण' की मेडिकल की पढ़ाई असम्भव दिख रही थी, लेकिन प्रवीण के राज्य में प्रथम आने से पैसे की चिन्ता कम हो गई, उसे अच्छी छात्रवृत्ति मिल गई थी। माँ ने पति को अपने विश्वास

में लेते हुए कहा, ''श्यामा अभी छोटी है, मुझे भी अस्पताल का कार्य और घर-बार सँभालने में सहयोग की जरूरत है, इधर प्रवीण भी पढ़ने बाहर चला जाएगा, श्यामा को घर-बार के कामकाज में निपुण हो जाने दीजिए, साथ-ही-साथ उसे किसी Special Education (विशिष्ट शिक्षा) जहाँ मूक-बधिरों के लिए दी जाती है वहाँ पढ़ाने का प्रबन्ध करवा देंगे।''

''यह हमारे छोटे शहर मुरादनगर में कैसे सम्भव है ?'' पति ने प्रतिवाद किया।

''लेकिन आप मुरादनगर से अपनी नौकरी के लिए दिल्ली कब तक बसों में धक्का खाकर जाते रहेंगे ? क्या अपना तबादला दिल्ली नहीं हो सकता है ?'' पत्नी ने तर्क दिया।

''ये तब ही सम्भव है जब तुम अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दो, क्या तुम एक साधारण गृहिणी बनकर रह सकोगी ? अपनी जीवन भर की राजकीय मेडिकल नर्स की सेवा से निवृत्त होकर, तुम्हारी पेंशन की हानि हो जाएगी अलग।'' पति का तर्क अकाट्य था।

जीवन प्रवीण के लिए नई उत्साह-उमंगों से भरा हुआ था मेडिकल में शिक्षा के लिए। उसकी माँ ने यथायोग्य नए कपड़े का प्रबन्ध करवाकर प्रवीण को दिल्ली के नए मेडिकल कॉलेज में भिजवा दिया, साथ में खाने के लिए असली घी के बनाए हुए उसके पसन्द के पकवान भी थैले में डाल दिए। प्रवीण का होस्टल में रहना अनिवार्य था जिसके लिए उसे दिल्ली पहुँचकर दाखिला मिल जाने के बाद पता चला। दाखिले की औपचारिकता खत्म करके उसने होस्टल में अपने कमरे की खोज करना उचित समझा। कई लोगों से पता करने के बाद वह जब होस्टल गेट तक पहुँचा तो उसने देखा कि ज्यादातर लड़के अपने माँ-बाप के साथ कार में आए हुए हैं या कोई-न-कोई अपनी सवारी में, वही अकेला था जो थैले में कुछ सामान लटकाए पैदल आया हुआ था। खैर, गेट के चपरासी ने उसके हाथ में चिट देखकर बिना सलाम किए उसे इशारे से होस्टल 3 की ओर का मार्ग बतला दिया।

अगस्त का महीना होते हुए भी दिल्ली शहर में गर्मी से प्रवीण को पसीने आने लगे, होस्टल का माहौल भी अनजाने बेरुखे छात्रों एवं कर्मचारियों से भरा हुआ मिला। समझ में नहीं आ रहा था ऐसे रूखे वातावरण में वह गर्मी से बेहाल किससे कैसे कुछ पूछे ? खैर किसी तरह उसने आत्मसंयम से होस्टल में दाखिला ले लिया, वहाँ कमरा भी ठीक-ठाक था लेकिन वह आशंकित हो उठा — उसे अकेला कमरा नहीं मिला है, उसमें एक और मेडिकल तृतीय वर्ष का छात्र आने वाला है जो आजकल ट्रेनिंग पर बाहर गया हुआ है। एक रात अकेले में टाँग पसारकर सोने का सुख मिल जाने पर प्रवीण कल सुबह प्रथम वर्ष (Ist year) के छात्रों के लिए

परिचय एवं जलपान के लिए आयोजित संस्थान के स्टाफ एवं शिक्षकों के स्वागत सभा के सुनहरे स्वप्नों में खो गया। सुबह जल्दी ही उसकी आँख खुल गई। उसकी सूरज निकलने के पहले उठकर नित्यकर्म, पूजापाठ आदि करने की आदत थी। उसके लिए उसे कमरा बन्द करके बाहर खोज-खबर लेने जाना पड़ा, रास्ते में कई कमरे पड़े जो अन्दर से बन्द होने पर भी वहाँ से शोरगुल भरी आवाज सुनाई दे रही थी, "अरे यार कोई नया पंछी कमरा नम्बर 9 में आ गया है, उठकर सुबह-सुबह खटर-पटर कर रहा है, चैन से सोने नहीं देगा ये साला ... इसको पता नहीं है यहाँ रात भर ड्यूटी करके लौटे हैं, अभी हमने कपड़े बदले भी नहीं हैं कि यह आ पहुँचा है अपना गुसल पर अधिकार जमा लेने के लिए, इसे तो सीनियर को कैसे अदब से बाथरूम साफ ..."

'अरे चुप रहो, क्यों फड़क रहे हो, अपना पूरा गुस्सा बेचारे नए पंछी पर ... वह भी पहले ही दिन उसके गुसल पर अपना स्वामित्व जमाकर।'

"अभी जाकर बाहर से किवाड़ की कुंडी लगाकर आता हूँ, बच्चू को आटे-दाल का भाव मिल जाएगा।"

प्रवीण इस चेतावनी को सुनकर भागकर गुसलखाने की ओर मुड़ गया, वहाँ पहुँचकर उसने शीघ्रता से नित्य कर्म करने की भरसक कोशिश की किन्तु उसकी जान मानो अधर में अटकी हुई थी, कोई बाहर से कुंडी न बन्द कर दे, इसी चिन्ता में वह अपने अन्दर से कुंडी लगाना भूल गया।

अचानक एक आगन्तुक ने धड़ाक से दरवाजा खोलकर उसे नहाता हुआ अर्द्धनग्न देख लिया। इस दयनीय स्थिति में पड़ जाने से उसकी हृदयगति बढ़ गई, घबराहट में वह सॉरी (क्षमा करना) न बोल सका।

किसी का शर्म से भरा अर्द्धनग्न शरीर देखकर वह आगन्तुक सहज भाव से बोला,"अरे अन्दर से चिटकनी लगाना चाहिए, इसका ध्यान रखना, वैसे मुझे किसी के शरीर को नग्न देखने में तुम्हारी तरह शर्म नहीं आती, यह तो यहाँ रोज़ ही करना पड़ता है, लगता है अभी फस्ट ईयर में आए हो। मुर्दों की चीर-फाड़ करके शरीर के प्रति अंगों को देखकर सीख जाओ, खैर जल्दी निकलो, मुझे देर हो रही है।"

प्रवीण इस दयनीय स्थिति से निकलने के लिए गर्मी में ठंडे पानी से पूरी तरह न नहाकर तुरन्त वहाँ से तौलिया लगाकर कमरे की ओर भागा।

"अरे, अपनी साबुन की बट्टी को तो लेते जाओ, यहाँ भूले तो रोज़ाना एक नई बट्टी लानी पड़गी बच्चू।" हँसते हुए सीनियर बोला।

प्रवीण ने कमरे में आकर किवाड़ बन्द करके अपने बदन को तौलिया से पोंछा, कई जगह उसे साबुन चिपका लगा किन्तु दूसरा कोई चारा न था, लेकिन कमरे के

एकान्त में उसे पूजा करते समय शान्ति मिली जिसका नित्य अभ्यास उसे ऊर्जा से भर देता था, उसने शिव वन्दना, सरस्वती वन्दना, गायत्री मन्त्र आदि का उच्चारण घर की भाँति किया जिसकी ध्वनि ने वातावरण को प्रात:कालीन 'सब भवनों से सरस सबेरा' बन मुखरित कर दिया।

कॉलेज जाने के लिए प्रवीण जब बाहर निकला तो उसके कानों में जलते तेल की तरह एक कड़क आवाज़ आई, "अरे, ये नया पंछी पंडितों की तरह पूजा-पाठ करने वाला है, इसे तो सबक सिखाना होगा, नहीं तो ये अपनी पूजा-पाठ से हमें सोने नहीं देगा, इसका गोरखधन्धा बन्द करना पड़ेगा हमारे नास्तिक ..."

प्रवीण पर इस आवाज़ का भयंकर आघात पहुँचा, वह भयभीत हो उठा, जिसका एहसास उसे आज तक नहीं हुआ था। वह कैसे मलेच्छों के कॉलेज में आ गया है, इन्हें वन्दना के सुरों से घृणा है, उसके छोटे शहर में तो सुबह-सुबह मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों से मधुर ध्वनि सुनाई देती है जिसकी आवाज़ सुनकर सब लोग अपने-अपने काम-काज में लग जाते हैं। एक मन हुआ कि वह तुरन्त यहाँ से भाग जाए, फिर उसे माँ की चेतावनी याद आई, वह मेडिकल की पढ़ाई पढ़कर एक कुशल डॉक्टर जब बन जाएगा तब ही माँ के ऋण से उऋण हो पाएगा, उसका जन्म किसी अन्य क्षेत्र के लिए नहीं हुआ है, केवल डॉक्टरी उच्च शिक्षा के लिए।

प्रवीण बेमन से सही लेकिन कर्तव्य-बोध से बाध्य होकर कॉलेज के प्रांगण में प्रथम दिवस पहुँचा। सुनते हैं पहले दिवस का अनुभव अविस्मरणीय होता है, वातावरण में हर काम करना समय की सजगता एवं कुशलता से मशीन की तरह सम्पन्न हो रहा था। वह इतना अधिक संवेदित था कि उसे अपने शरीर और मन पर सन्तुलन करने में बेहद परेशानी हो रही थी। उसे लगा कि उसके साथ के सब ही सहयोगी एक बड़ी मशीन के पुर्जों की तरह अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभा रहे हैं, सबको एक-एक रोल नम्बर दिया गया, सबको एक साथ मिलाकर अनेक भागों (Group) में विभाजित किया गया, अपने-अपने विभाग को चुनने की स्वतन्त्रता नहीं दी गई, केवल यह विभाजन लॉटरी द्वारा किया गया। Group Leader (ग्रुप लीडर) टीचर जिसे Demonstrator (प्रदर्शक) कहा गया। Facultymember (संकाय प्राध्यापक) Anatomy (शरीर रचना विज्ञान) और Physiology (शरीर विज्ञान) बतलाया गया। परिचय भी छात्रों का रोल नम्बर के आधार पर हुआ, सब ही कार्य निपुणता से डायरेक्टर (संकाय के निर्देशक) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ और उन्होंने जलपान करते समय सब ही छात्रों का प्रेमपूर्वक हाथ मिलाकर, पहले नाम पूछा फिर अभिवादन स्वीकार किया। पहली बार डायरेक्टर साहब से प्रवीण को अपना नाम सुनकर यह अहसास हुआ कि वह एक मशीन का पुर्जा नहीं है वह

एक जीवित प्राणी है, उसकी अपनी पहचान है, वह इस संस्थान की कीर्तिपताका को ऊँचा उठाकर जगत में लाने आया है, केवल डायरेक्टर के स्पर्श मात्र से।

मेडिकल कॉलेज का प्रथम दिवस कैसे, कब और कहाँ समाप्त हुआ, शाम होते ही उसे प्रवीण भूल गया, केवल थकान बनी रही। कॉलेज के प्रांगण से निकलकर होस्टल में पहुँचकर उसे अपने सीनियर के साथ मेल-मिलाप करना पड़ेगा, जिसकी कड़वी कुछ यादें उसके मन पर क्या, उसके पूरे शरीर पर अंकित हो चुकी थीं। खैर लौटते समय उसे अपने एक सहपाठी के साथ होस्टल जाने की सुविधा प्राप्त हो गई, लेकिन मेल-मिलाप यानी रैगिंग से आतंकित होने के कारण चुपचाप रहने में दोनों अपने को सुरक्षित पा रहे थे, एकजुट हो जाने पर आत्मविश्वास कुछ उनका वैसा ही था जैसा आत्म-समर्पण करते समय अपने-अपने शस्त्रों को नीचा किए हुए योद्धाओं का होता है। इस मेडिकल कॉलेज में दाखिला उन्हीं मेधावी छात्रों का होता है जो अपने-अपने स्कूलों, कॉलेजों, राज्य आदि में गिने-चुने श्रेणी में रहे होते हैं, शायद यह गर्वीला अहम् उन्हें अपने सीनियर के सामने नतमस्तक होने में एक अनजाने उत्पीड़न के अहसास से भर देता है। हर व्यक्ति ऐसे Stress (तनाव) को अपने-अपने तरह से जीता है और उसे Cope (सफलता या विफलता पूर्वक सामना करना) करता है। प्रवीण को तो अपने मध्यवर्गीय परिवार के संस्कार की निधि पूरी तरह मिली थी। आर्थिक विषमताएँ भी उसने झेली थी, किन्तु माँ-बाप ने भीषण गर्मी का ताप उस पर नहीं आने दिया था? पूरी स्कूली शिक्षा भी छोटी जगह में होने के कारण स्नेह, सम्मान, कीर्ति आदि की कोई कमी न थी। ईश्वर की ओर से उसे विलक्षण प्रतिभाशक्ति और ईश्वर आस्था प्राप्त थी किन्तु यह सब होते हुए भी उसके सीनियर एकजुट होकर होस्टल में मेल-मिलाप के लिए समायोजन कैसे करेंगे— यह दुश्चिन्ता उसे पलायन के लिए उत्साहित करने लगी। उसे लगा वह यहाँ से तुरन्त घर भाग जाए-मुरादनगर। ''अरे, आपका कौन-सा होस्टल है, क्या आपको अकेला कमरा (Single Room) मिल गया है? मुझे पता नहीं कौन Room-mate (कमरे में रहने वाला सहभागी) मिलेगा, अपने क्लास का या सीनियर।'' इस सहपाठी की आवाज़ ने प्रवीण की विचारतन्द्रा तोड़ दी।

''मेरा Room-mate कोई IIIyr का छात्र है, अभी उससे भेंट नहीं हुई है, लेकिन मेरा कमरा पुरुष छात्रावास के नम्बर 9 में है, तुम्हारा भी वहीं होगा, लेकिन वहाँ गुसलखाने में आम जनता का राज्य है, सुबह भी जहाँ शान्ति से नित्यकर्म करना असम्भव है।''

''अरे क्या तुम कल शाम को ही आ गए थे? मैं तो सीधे आज कॉलेज ही आया हूँ। होस्टल का कागज जमा करके घर जाकर सामान ले आऊँगा, मैं तो इसी शहर में

रहता हूँ। लेकिन यहाँ होस्टल के रूम में आना अनिवार्य है। मैं तो आज रात घर ही रहूँगा। फिर देखा जाएगा। सुनते हैं यहाँ रैगिंग करना सख्त मना है।''

''तुम तो भाग्यशाली हो, मुझे यहाँ अकेला झेलना पड़ेगा ही, मैं मुरादनगर का रहने वाला हूँ।'' कहकर प्रवीण ने चुप्पी साध ली। वैसे भी वह अपने कटु अनुभवों को कहने-सुनने का आदी न था, उसकी बहन गूँगी-बहरी, माँ-बाप कामकाजी, फिर अपने जीवन में उसे कटु अनुभव होने के अवसर ही कहाँ मिले थे।

उसे चुप देखकर सहपाठी ने सलाह दी, ''मेरा कहना मानो, आज रात मुरादनगर लौट जाओ, कल सुबह सीधे कॉलेज आना। इस तरह आज सीनियर हम लोगों को घेर नहीं पाएँगे, फिर कल की कल देख लेंगे, एक साथ जुटकर।'' हँसते हुए वह सहपाठी वहाँ से खिसक लिया।

प्रवीण वास्तव में पशोपेश में था, उम्र भर वह अपने सहपाठियों से अलग-थलग रहा था, उसे मित्रों से मेल-मिलाप करने में रुचि नहीं थी, उनकी संगत में उसे लगता है कि उसकी पढ़ाई में बाधा पड़ती थी। ईर्ष्या का भाव उसमें नहीं आया था क्योंकि वह पढ़ाई में अपने सहपाठियों में अपनी विशिष्टता एवं उत्कृष्ट सफलता के कारण एक प्रतिभाशाली व्यक्ति बन चुका था। मेडिकल की पढ़ाई की चुनौती उसके लिए प्रश्नचिह्न नहीं थी, लेकिन यहाँ का होस्टल का माहौल अवश्य। उसे रवीन्द्रनाथ की कविता की पंक्ति ने सहारा दिया ... 'अकेला चलो रे'।

साहस बटोरकर सीढ़ियाँ पार करके जब अपने कमरे में दाखिल होने लगा तो कमरे का ताला खुला, पूरा कमरा उथल-पुथल भरा मिला। थोड़ी देर तो वह आश्चर्य चकित ठगा-सा खड़ा रहा किन्तु वहाँ उसका सामान में से कोई अन्य चीज़ गायब होने का...अरे यहाँ से तो माँ की बनाए हुए पकवान गायब हैं, लगता है कोई व्यक्ति ने कमरे में घुसकर पूरी तलाशी ली है, उसे खाने-पीने की चीजें मन भायी हैं। माँ के भेजे हुए पकवान की चोरी प्रवीण के ऊपर इस समय असहनीय प्रहार थी, उसे बड़ी जोर से भूख लग रही थी। सुबह से जलपान में केवल एक मिठाई और समोसा खा लेने के अलावा उसे अभी तक कुछ खाने-पीने को नहीं मिला था। दोपहर के अवकाश में वह होस्टल डर से नहीं आया था, कॉलेज की कैंटीन में जाने का साहस बटोर नहीं पाया फिर वहाँ भी पढ़ाई-लिखाई विशेषकर अपने ग्रुप की और टाइम-टेबल, लाईब्रेरी की पाठ्यलिस्ट आदि की जानकारी में समय कहाँ बीत गया, पता नहीं चल पाया था। अनमने मन से वह पलंग पर बैठा कि अचानक एक आगन्तुक ने उसको सम्बोधित किया, ''यंग फेलो, अपनी खिड़की खुली छोड़ गए थे क्या आप? यहाँ बन्दरों का राज रहता है, उन्होंने आपके कमरे की तलाशी ली और जो कुछ खाना-पीना रखकर गए होंगे वह बन्दरों ने ले लिया है। उनका

शोरगुल सुनकर शायद यहाँ के कर्मचारी ने वार्डर से चाबी लाकर आपका कमरा सँभाल दिया है। यहाँ कभी भी खिड़की-दरवाजे खुले मत छोड़कर रखना, बन्दर तो आपकी मिठाई क्या किसी का टूथपेस्ट भी नहीं छोड़ते। सुनते हैं आपके पास बन्दरों को खाने के लिए मिठाई-पकवान बड़ी मात्रा में मिले हैं। उन्होंने कुछ खाया और कुछ कर्मचारी के लिए छोड़ गए थे, यह सुनने में आया है। छोड़ो यार, जो होना था वह हो गया, आगे ध्यान रखना अपना।'' कहकर वह चला गया, प्रवीण उसे थैंक्स भी कह न सका।

बन्दरों ने या हनुमान जी ने उस पर कु-दृष्टि डाली है। प्रवीण का भयभीत चित्त चिन्ताओं से घिर उठा, साहस बटोरकर उसने अपने कमरे को सुरक्षित करने के लिए ताले-चाबी की तलाश कर्मचारी से की, भाग्यवश वह वार्डन के पास नहीं पहुँचा दिए गए थे, कर्मचारी ने प्रवीण को नया छात्र समझकर आड़े हाथों लिया, ''ग़ज़ब किया आपने, कमरे में दावत के लिए बन्दरों को मिठाई देकर अब तो इस होस्टल का पता दे दिया है, देखो रोज़ आकर उनकी टोली हमें परेशान करेगी, आप लोगों का सुबह-शाम तक पता नहीं होता, हमारी ड्यूटी कहाँ-कहाँ की है, हम बैठकर बन्दरों से कैसे रखवाली कर सकते हैं, इस अस्पताल में रोगियों के घरवाले भी खाने-पीने की चीजों को बन्दरों से बचा नहीं पाते, जब देखो तब उनका सामान लेकर पेड़ पर कूदकर बैठ जाते हैं। होस्टल की ओर एक बार परक गए तो बस इन बन्दरों के उत्पात से भगवान बचाएँ।''

प्रवीण को समझ में नहीं आया अपनी सफाई में क्या कहे, ''बस मुझे ताला-चाबी वापस मिल गई है, आपको बहुत-बहुत ...''

''कोरी वार्त्ता से काम नहीं बनेगा, कुछ हमें भी चाय-पानी की जरूरत ...''

''हाँ, क्यों नहीं, बतलाओ यहाँ क्या मिलता है, मुझे भी बड़ी ज़ोर की भूख लगी है।''

''यह बात बनी, चलिए अपने मेस में सब कुछ मिल जाता है, जेब में पैसे होने चाहिए,'' कहते हुए चपरासी प्रवीण को मेस में ले गया। उस कर्मचारी का अचानक व्यवहार परिवर्तन देखकर प्रवीण को अटपटा-सा लगा, लेकिन इस समय चपरासी के साथ चाय और कुछ जलपान कर लेने में उसे राहत मिली। चाय पीते समय चपरासी ने बतलाया कि रात नौ बजे वार्डन साहब का दौरा होता है। वह इस बात का विशेष ख्याल रखते हैं कि नए छात्रों को पुराने छात्र उनके कमरों में घुसकर परेशान न करें। हँसी-मज़ाक का माहौल टी.वी. वाले हॉल तक सीमित रखा जाता है। वहीं लोग आकर मिलते-जुलते हैं। ज्यादातर लड़के सिगरेट बाहर जाकर या कोने में आड़ करके पीते हैं। यहाँ पर लड़के-लड़की दोनों के मिलने-जुलने में

पाबन्दी नहीं है लेकिन लेडीज़ होस्टल के कमरे में रात के नौ बजे के बाद मिलने की सख्त मनाही है। लेडीज होस्टल में लड़के-लड़कियों की निगरानी में ज्यादा सख्ती है। प्रवीण को चपरासी की बातों में रुचि नहीं थी, उसका सारा ध्यान खाने के अलावा इस बात पर था कि चपरासी के साथ बैठकर चाय-पानी तक की इस चर्चा को जल्दी-से-जल्दी कैसे खत्म किया जाए। स्वभाव से वह अन्तरमुखी और किसी हद तक असामाजिक एकान्तप्रिय स्वतन्त्र व्यक्ति था, किन्तु इस चपरासी की चपलता को इस समय कृतज्ञतावश सहन करने के लिए विवश था। औपचारिकता में चपरासी का हाथ थामकर प्रवीण ने कहा, "मेरे कमरे में इस समय ताला नहीं लगा है, जल्दी जाकर वहाँ का प्रबन्ध करूँ, सामान भी इधर-उधर है, चलता हूँ फिर कभी हम बैठकर बतियाएँगे।"

प्रवीण का शरीर सुडौल गौर वर्ण का तथा कान्तिमान मुखमंडल होने के कारण अपनी छवि, चाल-ढाल आदि से आम व्यक्ति पर अपनी छाप छोड़ जाता था। होस्टल में ऐसे नए छात्र के मेल-मिलाप के दौर में खिंचाई करना सीनियर छात्रों का आमोद-प्रमोद का अंग रहा है, शायद तनावमुक्त होने का सहज सुलभ मार्ग। लगता है चौबीस घंटों के बीच होस्टल में प्रवीण अनेक तरह की अफवाहों के बीच आ गया था, कोई उसे पोंगा पंडित, कोई कर्मकांडी अन्धविश्वासी, कोई ब्रह्मचारी चोटीवाला तो कोई दुधमुँहें माँ का छौना' आदि की उपाधियों से उसकी खिंचाई (Ragging) करने का इच्छुक था।

टी.वी. रूम में प्रवीण खाना खाकर अखबार के पन्ने खोज रहा था कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर उसे चौंका दिया, "अरे, सुनने में आया है तुम अपने राज्य यानी उल्टा प्रदेश के फस्ट रैंक में पास होकर आए हो। इस साल यहाँ अपने कारनामे दिखलाओ तो कोई बात है, यहाँ के हर छात्र, हर शिक्षक की दौड़ Nobel Prize (नॉबिल पद) को लेने की रहती है, तुम्हें यहाँ 'पास' और 'फेल' हो जाने में कोई देर नहीं लगेगी, लेकिन ..."

प्रवीण अपने कन्धे पर किसी अनजाने व्यक्ति का हाथ रखना और तू तड़ाक से सम्बोधन करना स्वीकार कैसे करता, उसने बेरुखी से उत्तर दिया, "यह तो समय बतलाएगा कि यहाँ से मैं फेल होकर जाऊँगा या पास होकर। सुनते हैं इस मेडिकल कॉलेज में दाखिला मिल जाए फिर फेल होकर भी छात्र को पास करना पड़ता है, यह इस संस्थान की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"

"तो कदम रखते ही तुम नेतागिरी करने लगे हो, यहाँ पर बच्चू एड़ी-चोटी की मेहनत करनी पड़ती है, हर समय सीनियर को सलाम, टीचरों की चापलूसी, उनके लिए रिसर्च की प्रकाशित नई लिस्ट लाना, रोगियों की रात-दिन सेवा और लैब में

जाकर पेशाब, खून, सबकी जाँच उपलब्ध करवाना, वगैरह-वगैरह बिना चू चा किए।''

''मैं तो अभी फस्ट ईयर का छात्र हूँ, मुझे तो फस्ट सत्र के काम में निपुण होना है।''

''अरे पोंगापंडित जी। वह तो मुझे भी मालूम है। ज़रा सुनो यारो, यहाँ आओ इस भोले बालक को बतलाऊँ, कुछ ज्ञान लाभ दो।'' हँसते हुए उस छात्र ने मधुमक्खियों की तरह गुड़ की ओर अनेक सीनियर छात्रों को इकट्ठा कर लिया।

''अच्छा, इस कॉलेज में आपको कोई पढ़ाता नहीं, सब लाइब्रेरी जाकर हम खुद पढ़ते हैं। हर दूसरे दिन आपको सूता जाएगा, यानी क्या पढ़ा है, समझा है उसके बारे में नम्बर दिए जाएँगे जिसे हम लोग Assessment (मूल्यांकन) कहते हैं, उसी आधार पर सेमिस्टर (सत्र) खत्म होने पर आपको Grade (श्रेणी) मिलेगा, यारो बोलो इसको A, B, C, D देना है किस आधार पर।'' ये कड़क आवाज़ प्रवीण के आत्म-सम्मान पर दोहरा प्रहार थी। सभी ने एक स्वर में कहा, ''इसका Viva Voce (मौखिक परीक्षा) होने के बाद ही।''

''पर आज तो यह पंछी अकेला फँसा है, जब कई और फस्ट ईयर वाले होस्टल न आ जाए तब तक Viva रोका जाए। इस समय सब पंचों की राय हो तो इसे एक काम सौंपा जाए। यह एक गुलाब का फूल लेकर लेडीज होस्टल जाएगा, वहाँ जितनी इसके ग्रुप में महिला मित्र होंगी उन्हें यह शुक्रवार की रात 8.30 बजे इस Viva के लिए बुलावा देगा, सब नए फस्ट ईयर के लड़कों को भी।''

''यदि यह काम न कर सका तब इसे क्या सज़ा दी जाएगी।''

''इसकी कम्बल परेड होगी या हम सब मिलकर इसे गालियाँ देंगे, खूब सारी। इस समय हमारे नरक के दरवाज़े पर यमराज यानी वार्डन का आगमन है। सब लोग चुपचाप अखबार पढ़ो या अपने-अपने कमरे में जाओ, आज की सभा का यहीं विराम होता है,'' कहकर उस सीनियर ने ओंठों को बन्द कर लेने का इशारा किया और हॉल में जो कोई बैठा था उसने तुरन्त वैसे ही बैठकर व्यस्त होने का अभिनय किया।

प्रवीण की चेतनाशक्ति अवाक् स्थिति में थी, जीवन में अपमान के घूँट पीने की उसकी पहली अनुभूति थी, उसे सिंगमेंट फ्रायड की उक्ति याद आई, 'बर्बर मानव हथियारों द्वारा अपना प्रतिशोध प्रकट करते हैं, किन्तु आज का सभ्य मानव दूसरों की मानहानि करके।' विचारों में उसको पता नहीं चल पाया कि वार्डन साहब कब से उससे पूछ रहे हैं—''प्रवीण, आपको इस होस्टल में कैसा लग रहा है? सुनते हैं आज बन्दरों ने आपके सामान को बिखेर दिया, खाने-पीने का सामान ले गए हैं ...।''

प्रवीण ने फुसफुसाकर जवाब दिया, ''थैंक्स सर, बन्दरों का काम ...।''

''कोई बात नहीं है, Take it easy (टाल जाओ)।'' 'कहकर वार्डन चले

गए और प्रवीण अपने कमरे में आकर सोने का उपक्रम करने लगा। आज उसे लाख कोशिश करने पर भी नींद आने का नाम नहीं ले रही थी। रात्रि गहन हो जाने पर एकाएक उसकी नींद उचाट हो गई, उसने स्वप्न में देखा कि एक सुन्दर परी, बहुत सुनहले पंखवाली उसके पास आई और हँसकर उसे अपने पास आने का निमन्त्रण दे रही है। इतने में उसके चारों ओर दैत्याकार युवा पुरुषों का झुंड आकर उसके सुनहले पंख तोड़ने लगता है, वह उन लोगों से इतना अधिक डर जाता है कि साहस करके उनसे कोई प्रतिशोध नहीं लेता। नींद उचट जाने पर प्रवीण ने पाया कि ये भयंकर स्वप्नदोष मात्र न था, वास्तव में उसे रात्रिक वीर्य निकल गया और उसका सारा शरीर पसीने से तरबतर था। इस दयनीय स्थिति में उसे लगा वह गुसलखाने में जाकर अपने को साफ़-सुथरा करे। किन्तु कमरे से वहाँ तक जाने की हिम्मत जुटा नहीं पाया, उसे सुबह का चित्र खड़ा हुआ दिखाई देने लगा, उठकर उसने बोतल से पानी पीया, थोड़ा पानी लेकर आचमन किया और मन-ही-मन संकल्प लिया कि वह कल के बाद अपने घर मुरादनगर चला जाएगा। कुछ दिनों तक वहीं से कॉलेज में आकर पढ़ेगा, जब यहाँ का वातावरण सामान्य हो जाएगा तब ही होस्टल के कमरे में रहेगा। अपनी पूजापाठ, जीवनचर्या में ऐसी कुसंगति का प्रभाव नहीं पड़ने देगा। हठधर्मी वह बचपन से था।

घर मुरादनगर में पहुँचकर माँ ने प्रवीण की रोनी शक्ल को देखकर फिर कुछ पूछने की कोशिश नहीं की, केवल बड़ी सतर्कता से पति और पुत्र के लिए दोपहर के खाने-पीने का प्रबन्ध कर देती। दोनों बाप-बेटे एक साथ बस द्वारा अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच एक साथ शाम को घर लौट आते। प्रवीण की इच्छाशक्ति ने उसे आशातीत सफलता दी, वह सेमिस्टर के अन्त में फस्ट ईयर में सर्वश्रेष्ठ छात्र घोषित हुआ और होस्टल में उसकी दिनचर्या, पूजापाठ आदि को सहज रूप 'सिर फिरे' की उपमा देकर स्वीकारा गया। किन्तु मन-ही-मन प्रवीण अपने-आपको अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह में फँसकर अपने आत्मघात को भूल नहीं पाया। शारीरिक घाव दवा-दारू लेकर समय के साथ पूर जाते हैं किन्तु उत्पीड़न की खरोंच अज्ञात मन पर अमिट रही। इसका एहसास उसे मेडिकल की लम्बी यात्रा में एम.डी. करते समय, विदेश अध्ययन के दौरान अमेरिका तक के व्यक्तिवादी प्रजातान्त्रिक, बहुउद्देशीय भूमंडलीकरण की गुहार लगाने वाले देश में विचलित करता रहता है। अंगरेजी के Ragging का शाब्दिक अर्थ Old and torn (जीर्ण-शीर्ण)करना है क्या मेल-मिलाप जैसे हिन्दी के सौहार्दपूर्ण शब्द को रैगिंग कहा जा सकता है जो अमानवीय हद तक पहुँचा दे?

❐❐❐

मेरी अवधारणा है कि सफल मनोवैज्ञानिक बनने के लिए अच्छे साहित्य का खूब मन लगाकर अध्ययन करना चाहिए। मैंने सतत अंग्रेजी, हिन्दी एवं संस्कृत के भण्डार को खोजने का प्रयास किया है। अपने पाठ्य विषय दर्शन-मनोविज्ञान-मनोचिकित्सा विज्ञान एवं अनेक मूर्धन्य विद्वानों की संगति में बैठकर मैंने निरन्तर यह कोशिश की है कि मैं अपने रोगियों पर आधारित 'केस रिपोर्ट' पर हिन्दी में कुछ न लिखूं क्योंकि यह सब आम चर्चा की विषय-वस्तु नहीं है, वह तो अत्यन्त गोपनीय अन्तरंग संवाद है जिसने निस्सन्देह मुझे चेतन एवं अचेतन मन को खोलने की कुंजी प्रदान की, लेकिन वर्तमान और यथार्थ पर अपनी कड़ी नज़र रखने के कारण अपने देश, काल, जीवनचक्र के कटु और मधुर अनुभवों से कैसे मैं मुक्त हो सकती हूँ? यह Subjectivity (आत्मपरकता) अत्ना स्वाभाविक है। मेरी कहानियों में अंशत: आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं की अभिव्यक्ति है।

1936 में प्रेमचन्द उच्च कोटि के कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। आज भी उनकी अनेक कहानियों को चाव से पढ़ते समय हमें लगता है कि गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। उनके अनुसार "वर्तमान आख्यायिका का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ व स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है" (मानसरोवर भाग- 1, प्राक्कथन : कमल किशोर गोयनका (सं.) 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1988, पृ. 371) वह इसमें जोड़ते हुए स्पष्ट करते हैं कि "अब वह केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का, सजीव, मर्मस्पर्शी चित्रण है। एक तथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। अब उसमें व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक रहता है। लेखक को जो कुछ भी कहना है, वह कम-से-कम शब्दों में कह डालना चाहता है।" मेरी प्रस्तुत कहानियाँ इस मानदण्ड पर कितनी सटीक हैं, इसे मैं पाठकों एवं साहित्यकार वर्ग की प्रतिक्रिया पर छोड़ देना चाहूँगी। मुझे तो लिखते समय किसी आलोचनात्मक साहित्य की रूढ़िबद्धता का दूर-दूर तक अनुभव न था, यह तो कृति है उस पल की जिसमें लेखक लिखने के लिए बाध्य हो जाता है।

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

एन–77, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली–110001

दूरभाष : 23310505, 41523565

Visit us at : www.sastasahityamandal.org

E-mail : manager@sastasahityamandal.org